उपासनाओं का सार

लेखिका :

श्रीमती वीणाबाई

श्रीसद्गुरवे नमः

प्रकाशक : ....

सर्वाधिकार सुरक्षित : प्रकाशकाधीन

सहयोग राशि : 15 रु० मात्र

वर्ण-संयोजक
राजेन्द्र साह, एम०ए०, बी०एड०
९९३४६१५९२२, ९४७०७६१६७६

प्राप्ति-स्थान

....
कोलकाता, पिन : 700006
संपर्क : 09830905761

•• समर्पण ••

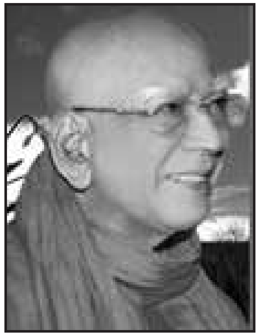

'त्वदीयं वस्तु सद्गुरोः तुभ्यमेव समर्पये!'

प्रात: स्मरणीय अनंत श्री-विभूषित ब्रह्मलीन सद्गुरु पूज्यपाद
महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज के मस्तिष्क-स्वरूप
अध्यात्म-गगन के देदीप्यमान भास्कर
महर्षि संतसेवी परमहंसजी महाराज
के कर-कमलों में सभक्ति
समर्पित!

–वीणा अग्रवाल

•• दो शब्द ••

वेद-उपनिषद् आदि सद्ग्रंथों में आत्मा, परमात्मा, मोक्ष आदि संबंधी जो अवधारणा है, वह भाषा और प्रस्तुतीकरण-संबंधी क्लिष्टता के कारण सामान्य जन के लिए सुग्राह्य नहीं है। उस वेदान्त ज्ञान को सरलीकरण करके संत-महात्मागण लोगों के बीच जनभाषा में प्रस्तुत करते हैं। परिणामस्वरूप लक्ष्य-लक्ष्य जीवों को उद्धार का मार्ग मिल जाता है। वह वेदान्त ज्ञान इतना पूर्ण, परिपक्व और सत्य है कि उसे किसी भी तरह संशोधित या परिवर्त्तित नहीं किया जा सकता। सनातन और पुरातन होने पर भी आज वह उतना ही उपयोगी और प्रासंगिक बना हुआ है। इसी वैदिक धर्म को नानक, कबीर, बुद्ध, महावीर, सूर, तुलसी, शबरी, मीरा–सबने अपनाया और ईश्वर का साक्षात्कार कर मोक्षपद को प्राप्त किया।

इसे ही हाथरस के संत तुलसी साहब ने 'संतमत' कहकर प्रचारित किया। पश्चात् राधास्वामी साहब, बाबा देवी साहब, महर्षि मेँहीँ परमहंस, महर्षि संतसेवी परमहंस आदि महापुरुषों ने इसे जन-जन तक पहुँचाने का पुनीत कार्य किया। संतमत में तीन प्रमुख बातें हैं–सत्संग, गुरु और ध्यान। सत्संग से सदाचरण और ज्ञान सीखते हैं, गुरु से साधना की सद्युक्ति मिलती है और ध्यान से निर्वाण मिलता है। इन प्रमुख बातों के अलावे अनेक गौण बातें भी हैं, जिनका ज्ञान भक्तिपथ पर चलने में सहायक होती हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में भक्तों के लिए आवश्यक विभिन्न विषयों पर प्रवचन या आलेख के माध्यम से प्रकाश डाला गया है। मैं संतमत का साहित्यकार, व्याख्याकार या विशेषज्ञ होने का दावा नहीं कर सकता। मेरा ज्ञान उस रसबूँद के समान है, जिससे स्वाद तो पता चल सकता है, पर तृप्ति नहीं हो सकती।

आशा है, भविष्य में भी ये इसी प्रकार नई-नई पुस्तकों का प्रणयन कर परहित में रत रहेंगे। गुरु-आज्ञा समझकर यह पुस्तक पाठकों को समर्पित है। इसकी उपयोगिता का आकलन पाठक ही कर सकते हैं। जय गुरु!

संतमत के वर्तमान आचार्य पूज्यपाद महर्षि हरिनन्दन परमहंसजी महाराज की शुभकामना

धर्मानुरागिनी परम भक्तिन श्रीमती वीणाजी ने संत सद्गुरु महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज तथा महाप्राज्ञ महर्षि संतसेवी परमहंसजी महाराज की शरण में आकर उनके कल्याणकारी ज्ञान से स्वयं लाभान्वित होकर अपने विचारों की अभिव्यक्ति **'उपासनाओं का सार'** नाम की पुस्तिका में की है। साथ ही पूज्यपाद संतसेवीजी महाराज का प्रवचन एवं अन्य महात्माओं के उपदेशों को इस पुस्तिका में देकर पुस्तिका को विशेष उपयोगी बना दिया है। भक्तिमार्ग पर चलनेवाले श्रद्धालु भक्तों को इस पुस्तिका से मार्गदर्शन प्राप्त होता रहेगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

इस लोक-कल्याणकारी कार्य के लिए लेखिका को बहुत-बहुत धन्यवाद! परमात्मस्वरूप परम कृपालु गुरुदेव से मेरी प्रार्थना है कि इनका जीवन सदा सुखमय और शान्तिमय बना रहे तथा आगे भी इनके द्वारा लोक-हितकारी कार्य होता रहे।

शुभकामनाओं के साथ!

शुभाकांक्षी

•• विषय-अनुक्रम ••

क्रम सं०	विषय	पृष्ठांक
१.	हमारा जीवन पूर्णरूप से सुखी एवं शान्तिपूर्ण कैसे हो....	१
२.	गीता रहस्य अथवा कर्मयोग शास्त्र–	२
३.	विश्व की रचना व संहार –	४
४.	महर्षि संतसेवी परमहंस की वाणी–	१८
५.	स्वामी विवेकानन्द की वाणी–	२४
६.	साधना में सफलता कैसे?–	२८
७.	मानव तन देवदुर्लभ है –	३४
८.	एकनिष्ठ भक्त का कभी अनिष्ट नहीं होता –	३७
९.	गुरु बिन सब अंधकार –	३९

1. हमारा जीवन पूर्णरूप से सुखी एवं शान्तिपूर्ण कैसे हो सकता है ?

सुख सबको प्रिय है, किन्तु सुख किसमें है, यह नहीं जानता है, इसलिए भ्रम में रहता है। मनुष्य-जीवन में हमें क्या करना चाहिए, क्या सिखना चाहिए, यह जानने की आवश्यकता है। जो इस आवश्यकता को नहीं जानता है, वह कर्म का निर्णय नहीं कर सकता। जब हम आवश्यकता जानेंगे, तब निर्णय करेंगे कि कर्तव्य-अकर्तव्य क्या है?

सब जीवों को सुख प्रिय है। पशु-पक्षी, कीड़े-मकोड़े आदि से तो पूछ सकते नहीं; किन्तु उनके भाव से पता चलता है कि उन्हें भी सुख चाहिए। कुत्ते की पीठ पर हम हाथ फेरेंगे, तो वह हमारे पास खुशी से दुम हिलाता रहेगा और यदि हम उसे हानि पहुँचाते हैं या बुरा व्यवहार करते हैं, तो वह भी हमें हानि पहुँचाने की कोशिश करेगा।

संसार में सभी सुख चाहते हैं। अतः सुख-प्राप्त करने के लिए उचित प्रयत्न करना चाहिए। संसार में मनुष्य भोग-विलास चाहता है। उस विलास से वह सुख महसूस करता है, इसलिए उस ओर दौड़ता है। किसी के पास पर्याप्त धन है, तो दूसरा कहता है–'तुम्हारे पास तो इतना धन है, तो तुम विलास कर सकते हो। मेरे पास धन नहीं, मैं कैसे करूँ?' वह कहता है–'मैंने तो कमाकर धन जमा किया है, तुम भी कमा लो।' इन्हीं सबसे ईर्ष्या-द्वेष की उत्पत्ति होती है। धनोपार्जन करके, विलास कर-करके शरीर रोगी हो जाएगा; किन्तु तृप्ति नहीं होगी। भोग-विलास कितना ही हो, चाहे कितना ही ऐश्वर्यवान हो, चाहे इन्द्र के समान हो, वे भी अपयश पाते हैं। भोग-विलास से अपनी इच्छा को कोई तृप्त नहीं कर सकता, अंततः दुःख ही मिलेगा।

जिज्ञासा–संसार इन्द्रियगम्य है, यह परिवर्तनशील है, एकरस नहीं रहता है। हम सुख के लिए संसार की वस्तु को पड़ने के लिए जीवन-भर दौड़ते रहते हैं। जैसे ही हम प्रयास करके उसके पास पहुँचते हैं, वह थोड़ा और आगे खिसक जाती है। जैसे ही थोड़ा आगे बढ़ते हैं,

इस आशा से कि यह मिलने के बाद मुझे सुख हो जाएगा; किन्तु वह फिर थोड़ा आगे खिसकर तुरत दुख में परिवर्तन हो जाता है। वह यानी माया का सुख थोड़ा-थोड़ा करके आगे खिसकता जाता है और हम जीवन-भर उसे पाने के लिए मृग-मरीचिका की तरह दौड़ते हुए जीवन भर परेशान ही बने रहते हैं। अब हमें महापुरुषों से यह जानना चाहिए कि आखिर वास्तव में सुख क्या है और किसमें है?

जिज्ञासा–जिज्ञासा करने पर पता चलता है कि इसके अतिरिक्त और सुख भी है, जिसे नित्यानंद कहते हैं। अब हमने अच्छी तरह समझ लिया कि हम जिधर सुख को ढूँढ़ रहे हैं, वहाँ सुख नहीं है। अब हमें सुख को ढूँढकर निकालना है।

सच्चा सुख परमात्मा की प्राप्ति में है। मनुष्यों को स्फुरणा होती है कि मैं कर्ता हूँ, भोक्ता हूँ, मैं सुखी हूँ या दुःखी हूँ–यही बंधन है। यही जिसके चित्त में है, वे ही दुःखी हैं, वे ही बंधन में हैं। जिनके चित्त में ये वृत्ति नहीं उठतीं, वे ही मुक्त हैं, वे ही संत हैं, वे ही सुखी हैं। इसी सुख को पाने के लिए भक्ति करते हैं।

अब हम जिन भगवान की पूजा, आराधना करते हैं, उनसे जानें। अतः अब हमें भगवान श्रीराम, भगवान शिव, भगवान महावीर, भगवान बुद्ध, भगवान कृष्ण एवं सभी देवी-देवताओं से जानना है कि हम भक्ति किस प्रकार करें, जो हमें सुख की प्राप्ति हो और हमें वैसा सुख चाहिए, जो कभी हमसे दूर न हो। जिसे पाने के बाद हमें कभी भी दुःख का मुँह न देखना पड़े।

2. गीता रहस्य अथवा कर्मयोग शास्त्र

(सुख-दुःख विवेक)

इस बात का निर्णय हो चुका कि आत्मा की शान्ति या सुख ही अत्यन्त श्रेष्ठ है। किन्तु केवल आत्मा के सुख से ही काम नहीं चल सकता। जैसे सोना अधिक मूल्यवान है, किन्तु केवल सोने से ही, लोहा आदि धातुओं के बिना संसार का काम नहीं चल सकता। अथवा जैसे केवल चीनी से ही नमक का काम नहीं चल सकता, उसी तरह आत्मसुख या शान्ति को भी समझना चाहिए। इस शान्ति के साथ शरीर धारण के लिए कुछ सांसारिक वस्तुओं की आवश्यकता होती है। इसलिए आशीर्वाद के संकल्प में केवल 'शान्तिरस्तु' न कहकर 'शान्तिः पुष्टिस्तुष्टिश्चास्तु।' अर्थात् शांति के साथ पुष्टि और तुष्टि भी चाहिए। कहने की रीति है, कठोपनिषद् का भी यही तात्पर्य है। नचिकेता जब यम के लोक में गया, तो उसने सर्वप्रथम दो अन्य वर माँगकर अंत में तीसरे वर में माँगा–'मुझे अध्यात्म-विद्या का उपदेश करें।'

यम के कहने पर कि इस वर के बदले और अधिक सम्पत्ति-सुख ले लो। किन्तु उसने आग्रह करके कहा–'मुझे आत्मिक सुख की प्राप्ति करा देनेवाले आत्मविद्या का उपदेश करो।' सारांश यह है कि उपनिषद् के अंतिम मंत्र का जो वर्णन है, उसके अनुसार आत्मज्ञान यानी ज्ञान और योग–दोनों की अत्यन्त आवश्यकता है। इसको हम और स्पष्ट करते हैं–

इन्द्र तो स्वयं ब्रह्मज्ञानी थे, फिर भी उनका राज्य छिन जाने पर उन्होंने वेश बदलकर राज्य पाने के लिए प्रह्लाद का शिष्य बनकर उनकी सेवा की और प्रह्लाद के प्रसन्न होने पर अपने गुरुदेव के द्वारा बतायी गयी युक्ति से उनसे उनका शील माँगा। शील का अर्थ विनम्रता एवं सदाचार-पालन भी है। तब प्रह्लाद ने प्रसन्न होकर शील के साथ उनका राज्य लौटा दिया। इस तरह इन्द्र ने अपना राज्य लौटाया।

इस सुन्दर प्रसंग से यह साफ प्रकट है कि आत्मज्ञान की योग्यता भले ही अधिक हो, किन्तु जिसे इस संसार में रहना है, उसको अन्य लोगों के समान ही अपने लिए तथा अपने देश के लिए ऐहिक

समृद्धि प्राप्त कर लेने की आवश्यकता है और नैतिक हक भी है। अतः इस संसार में यदि प्रश्न उठे कि मनुष्य का सर्वोत्तम ध्येय क्या है? तो हमारे कर्मयोग शास्त्र के अनुसार–प्रेय और श्रेय अथवा ज्ञान और ऐश्वर्य दोनों को एक साथ प्राप्त करें। जिस भगवान से बढ़कर संसार में कोई श्रेष्ठ नहीं, उनके दिखाये मार्ग पर ही सब चलते हैं। उन्होंने भी ज्ञान और ऐश्वर्य दोनों को अंगीकार किया है। यद्यपि आध्यात्मिक सुख ही ऊँचे दर्जे का है, तथापि उसके साथ दैहिक वस्तुओं की भी उचित आवश्यकता है, इसलिए सदा निष्काम बुद्धि से कर्म करते रहना चाहिए।

उसी तरह हम संसार में रहते हैं। जब जन्म लेते हैं, तभी से हमें देवी-देवताओं के नाम का सान्निध्य मिलने लगता है, फिर धीरे-धीरे माता-पिता मंदिर ले जाना सिखाते हैं और पूजा-पाठ का संस्कार मिलने लगता है–इसे समझिये सांसारिक सुख। इसकी भी प्राथमिकता है; क्योंकि हमें जन्म लेते ही आत्मज्ञान का रहस्य मालूम नहीं हो सकता और बिना संस्कार के इतनी दूर हम कैसे पहुँच सकते हैं। तो फिर यह समझिये यह प्राथमिक शिक्षा के लिए बहुत जरूरी है। किन्तु हम जीवन भर प्राथमिक कक्षा में ही रह जाएँगे, तो कभी भी कॉलेज की पढ़ाई नहीं कर पाएँगे। इसलिए इस ज्ञान के बाद हमारा वह ज्ञान यानी आत्मज्ञान भी बहुत ज्यादा आवश्यक है, नहीं तो हम पूर्ण मानव नहीं बन पायेंगे। मनुष्य की बुद्धि जितनी सुशिक्षित अथवा सुसंस्कृत होगी, उतनी ही योग्यतापूर्वक वह किसी बात का निर्णय कर पायेगा।

3. विश्व की रचना व संहार

जब कोई मनुष्य बिना ज्ञान प्राप्त किये ही मर जाता है, तब मृत्यु के समय उसको आत्मा के साथ ही प्रकृति के उन्नीस तत्त्वों से बना हुआ (दस इन्द्रियाँ–पाँच कर्मेन्द्रियाँ और पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, चार अंत:करण–मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार, पाँच शरीर के तत्त्व–क्षिति, जल, पावक, गगन और समीर) उस लिंग शरीर ही के कारण उसको नये-नये जन्म लेने पड़ते हैं।

जिस प्रकार जोंक घास के तिनके के छोर तक पहुँचने पर दूसरे तिनके पर अपने शरीर का अग्रभाग रखती है और पहले तिनके पर से अपने अंतिम भाग को खींच लेती है, वैसे ही आत्मा एक शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर में जाता है। जिस प्रकार हवा फूलों की सुगंध हर लेती है, उसी तरह जीव स्थूल शरीर का त्याग करते समय इस लिंग शरीर को अपने साथ ले जाता है। जिस प्रकार फूल में गंध और कपड़े में रंग लिपटा रहता है, उसी प्रकार लिंग शरीर में ये भाव भी लिपटे रहते हैं। बड़े-बड़े ऋषि-महात्माओं ने मन को अंतर्मुख करके आत्मा के स्वरूप के विषय में जो अनुभव प्राप्त किया, उसका वर्णन उपनिषद् ग्रंथों में किया है। जैसे जड़ और चैतन्य का एक होना। जीव और जगत् तथा परब्रह्म–इन तीनों का मूलस्वरूप आकाश के समान एकरूप और अखंडित है; जैसे अनार के अनेक दाने होने पर भी उस फल की एकता नष्ट नहीं होती, वैसे ही जीव और जगत् यद्यपि परमेश्वर में भरे हुए हैं, तथापि ये मूल में उससे भिन्न हैं, फिर भी उसे अनार के फल के समान जानना चाहिए।

अध्यात्म–सृष्टि ज्ञान केवल इन्द्रियों से प्रत्यक्ष दिखनेवाला केवल जड़ पदार्थ नहीं है, किन्तु इन्द्रियों के द्वारा मन पर होनेवाला अनेक संस्कारों या परिणामों जो एकीकरण द्रष्टा आत्मा किया करता है, उसी एकीकरण का फल है ज्ञान अर्थात् सच्चा ज्ञान वही है, जिससे विभिन्नता में एकता का बोध होता है।

हमें यह ज्ञान अवश्य होना चाहिए कि मैं कौन हूँ। मैं हाथ-पैर, मुँह नहीं, तो फिर कौन हूँ? जैसे कपड़े हमारे हैं, हाथ हमारा है, पैर हमारा है। पर हम यह नहीं कहते कि मैं कपड़ा हूँ, मैं हाथ हूँ, मैं पाँव हूँ। इसका मतलब मैं इन चीजों से भिन्न हूँ, यही ज्ञान जानना आत्मज्ञान है। इस ज्ञान को हम केवल देवी-देवता की पूजा करके नहीं जान पायेंगे। इसके लिए हमें इससे विशेष कुछ जानना पड़ेगा यानी इससे आगे बढ़ना पड़ेगा।

जरूरत दोनों की है। जैसे केवल आत्मसुख से ही काम नहीं चल सकता, ऐश्वर्य आदि ऐहिक सुख की भी आवश्यकता पड़ती है। उसी तरह प्रथम तो हमें देवी-देवताओं की उपासना करनी ही है, फिर थोड़ा ज्ञान हो जाने के बाद ज्ञान बढ़ाने के लिए, आत्मज्ञान जानने के लिए गुरु की आवश्यकता होती है। जैसे सर्वप्रथम नर्सरी क्लास में पढ़ना पढ़ता है। पढ़ते-पढ़ते जब हम योग्य बन जाते हैं, तो हम कॉलेज में एडमिशन (प्रवेश) लेने के लिए स्कूल और शिक्षक दोनों ही बदलने पड़ते हैं। यदि हम जिन्दगी भर छोटे स्कूल में ही पढ़ते रहेंगे, तो कभी भी विद्वान् नहीं हो पायेंगे। उसी प्रकार यदि हम जीवनभर केवल देवी-देवता को पकड़े रहेंगे, गुरु का महत्त्व नहीं समझेंगे, तो कभी भी आत्मज्ञान प्राप्त न कर चौरासी में पड़े रहेंगे।

हमें सारी बातों को समझकर अपने अनमोल जीवन का सही निर्णय करना चाहिए। क्योंकि यह मानव जीवन ८४ लाख योनियों में भटकने के बाद हमें प्राप्त हुआ है। उसे हम इस छोटे-से जीवन में सुख-सुविधा पाने के लिए बरबाद करते हैं, यह कदापि उचित नहीं और इस अनमोल जीवन को हम बरबाद करें, यह कभी भी समझदारी की बात नहीं। ऐसे लोग हीरा को लुटाकर कंकड़-पत्थर इकट्ठे कर रहे हैं। जिन्हें संत समझा-समझाकर थक गये, परन्तु हमारी थोथी बुद्धि उसे स्वीकार नहीं कर पा रही है–ऐसा क्यों?

उसका भी कारण है कि हम ८४ लाख योनियों में भटकते हुए इस मनुष्य-शरीर को पाये हैं, अत: हमारे पिछले संस्कार हमारे लिंग (सूक्ष्म) शरीर में चिपके हुए हैं, वे हमें आगे बढ़ने नहीं देते। इससे आगे बढ़ने के लिए हमें अथक प्रयास करने की आवश्यकता है। जिसपर किसी भी कारण से संतों की कृपा हो गयी या ईश्वर बेहद प्रसन्न हैं,

तभी उन लोगों का मन सत्संग में यानी सत्-चर्चा में जाने को करता है। जब सत्संग में जाने लगते हैं, तो वहाँ के प्रभाव से गुरु का महत्त्व समझ पाते हैं और गुरु बनाकर आत्मलाभ कर पाते हैं। यह रास्ता बहुत ही कठिन है। जैसे हीरा को प्राप्त करने के लिए बहुत मेहनत करनी पड़ती है, थोड़े-से मूल्य में हीरा नहीं मिल सकता, उसी प्रकार आत्मज्ञान को जानने के लिए हमें बहुत मेहनत करने की आवश्यकता है। यदि नहीं कर पायेंगे, तो फिर से ८४ लाख योनियों में चक्कर काटना पड़ेगा। अब हम मानव बुद्धिमान प्राणी खुद ही विचार करें कि हमें कौन-सा मार्ग अपनाना चाहिए। केवल इस शरीर के सुख के लिए ही सोचना है या इससे आगे भी बढ़ना है।

इस संसार में पूर्ण सुख तो मिल ही नहीं सकता; क्योंकि सुख के साथ दुःख लगा हुआ है। हम देख ही रहे हैं कि देवी-देवता हर व्यक्ति पूजता है। जन्म से ही पूजता है, किन्तु क्या कोई कह सकता है कि आजतक किसी भी व्यक्ति का पूर्ण रूप से दुःख समाप्त हुआ है? नहीं—नहीं हुआ और हो भी नहीं सकता। हर प्राणी जीवन भर रोता ही रहता है। पूजा-पाठ, जाप, यज्ञ, दान किसी में कमी नहीं रखता, फिर भी वह जीवनभर दुःखी रहता है, बताइये क्या कारण है? आत्मसुख ही ऐसा है, जो जीव को सुख-दुःख से परे कर सकता है। वह एक ईश्वर भक्ति से मिल सकता है और एक ईश्वर-भक्ति गुरु के द्वारा ही मिल सकती है।

भगवान श्रीकृष्ण ने गीता के नौवें अध्याय में स्पष्ट कह दिया है कि मेरे अंदर सब कुछ है और मैं ही सभी देवी-देवता, सब कुछ मैं ही हूँ। भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं—हे कौन्तेय! कल्प के अंत में सब भूत मेरी प्रकृति में आ मिलते हैं और कल्प के आरंभ में अर्थात् ब्रह्मा के दिन के आरंभ में उनको मैं ही फिर निर्माण करता हूँ। परन्तु हे धनंजय! इस सृष्टि निर्माण करने के काम में मेरी आसक्ति नहीं है। मैं उदासीन रहता हूँ, इस कारण मुझे वे कर्म बंधक नहीं होते। मैं अध्यक्ष होकर सब चराचर सृष्टि उत्पन्न करवाता हूँ। हे कौन्तेय! परमेश्वर कर्मानुसार जीवों को भला-बुरा जन्म देता है, अतएव वह स्वयं इन कर्मों से अलिप्त है

मूढ़ लोग मेरे उस परम स्वरूप को नहीं जानते, जो सब भूतों का महान् ईश्वर है। मनुष्य की देह में आने से वे मूर्ख मुझे मानव तनधारी समझकर मेरी अवहेलना करते हैं। उनकी आशाएँ व्यर्थ, कर्म फिजूल, ज्ञान निरर्थक एवं चित्त भ्रष्ट होते हैं। वे मोह में फँसे हुए आसुरी स्वभाव का आश्रय किये रहते हैं। किन्तु जो लोग यत्नशील, दृढ़व्रत एवं नित्य योगयुक्त होकर सदा मेरा कीर्तन एवं भक्ति से मेरी उपासना किया करता है, वे दैवी प्रकृतिवाले होते हैं। जो अनन्यचित्त लोग मेरा चिंतनकर मुझे भजते हैं, उन योगयुक्त पुरुषों का योगक्षेम मैं किया करता हूँ।

हे कौन्तेय! जो अन्य देवताओं का भक्त बनकर श्रद्धापूर्वक जो लोग पूजन करते हैं, वे भी विधिपूर्वक न हो तो भी पर्याय से मेरा ही पूजन करते हैं; क्योंकि सब यज्ञों का भोक्ता और स्वामी मैं ही हूँ। किन्तु वे तत्त्वतः मुझे नहीं जानते, इसलिए वे गिर जाया करते हैं। कोई भी देवता हो, वह भगवान का ही एक स्वरूप है। उदाहरण के लिए ऋग्वेद में कहा है—एकं सद्विप्रा बहुधा वदत्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः। (ऋ० १.१६४.४६) परमेश्वर एक है, परन्तु पंडित लोग उसको अग्नि, यम, मातरिश्वा (वायु) कहा करते हैं और इसके अनुसार ही आगे के अध्याय में परमेश्वर के एक होने पर भी उसकी ही अनेक विभूतियों का वर्णन किया गया है।

देव, पितर, गुरु, अतिथि, ब्राह्मण और गौ आदि की सेवा करनेवाले पर्याय से विष्णु की ही सेवा करते हैं। इस प्रकार भागवत धर्म के स्पष्ट करने पर भी कि भक्ति को मुख्य मानो। देवतारूप प्रतीक गौण है। यद्यपि विधिभेद हो, तथापि उपासना तो एक ही परमेश्वर की होती है। बड़े आश्चर्य की बात है कि भागवत धर्मवाले भी शैवों से झगड़ा किया करते हैं। यद्यपि यह सिद्धांत सत्य है कि किसी भी देवता की उपासना क्यों न करें, वह पहुँचती है भगवान को ही, तथापि यह ज्ञान न होने से कि सभी देवता एक ही है, मोक्ष की राह छूट जाती है। और भिन्न-भिन्न देवताओं के उपासकों को उनकी भावना के अनुसार भगवान ही भिन्न-भिन्न फल देते हैं।

देवताओं का व्रत करनेवाले देवताओं के पास, पितरों का व्रत करनेवाले पितरों के पास, भूतों को पूजनेवाले उन भूतों के पास जाते हैं और जो मेरा भजन करनेवाले हैं, वे मेरे पास आते हैं। सारांश यह है कि यद्यपि एक ही परमेश्वर सर्वत्र समाया हुआ है, फिर भी उपासना का फल प्रत्येक को उनके भाव के अनुरूप ही मिला करता है। इस बात को याद रखना चाहिए कि फल-दान का काम भी देवता नहीं करते, परमेश्वर ही करता है। भगवान श्रीकृष्ण ने स्वयं ही कहा है–सब यज्ञों का भोक्ता मैं ही हूँ, इसका तात्पर्य यही है। महाभारत में भी कहा है– जो पुरुष जिस भाव में निश्चय रखता है, उस भाव के अनुरूप ही फल पाता है–'यं यथा यथोपासते तदैवं।

पत्रं पुष्पं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ।।२६।।
यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ।।२७।।

अनेक देवताओं के उपासक का फल पहले चरण में बतलाकर दूसरे चरण में बतलाया है कि अनन्यभाव से भगवान की भक्ति करनेवालों को ही सच्ची भगवत्प्राप्ति होती है। अब भक्ति-मार्ग का यह महत्त्व बतलाते हैं कि भगवान यह नहीं देखते कि मेरा भक्त मुझे क्या समर्पण करता है? केवल उसके भाव की ओर दृष्टि देकर उसकी भक्ति स्वीकार करते हैं।

महाभारत में कथा है कि दुर्वासा ऋषि घर पर आये, तो द्रौपदी ने इसी प्रकार के यज्ञ से भगवान को संतुष्ट किया था। भगवद्भक्त जिस प्रकार अपना कर्म करता है, अर्जुन को उसी प्रकार करने का उपदेश देकर अब बतलाते हैं कि उससे क्या फल मिलता है–हे कौन्तेय! तू जो कुछ करता है, खाता है, होम हवन करता है, जो दान करता है, जो तप करता है, वह सब मुझे अर्पण किया कर। इस प्रकार करने से कर्मों के शुभ-अशुभ फल के बंधन से तू मुक्त रहेगा और (कर्मफलों के) संन्यास करने के इस योग से शुद्ध अंतःकरण युक्त हो जाएगा एवं मुझमें मिल जाएगा।

इससे पता चलता है कि भगवान भगवद्भक्त को भी कृष्णार्पण बुद्धि से समस्त कर्म करने कहते हैं। उन्होंने तीसरे ही अध्याय में अर्जुन से कह दिया कि 'मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यास।' मुझे सब कर्मों का संन्यास करके युद्ध कर और पाँचवें अध्याय में कहा है–ब्रह्म में कर्मों को अर्पण करके रागरहित कर्म करनेवाले को कर्म का लेप नहीं लगता। भगवान कृष्ण ने कहा है–हे कौन्तेय! मेरा भक्त कभी भी नष्ट नहीं होता। मुझमें मन लगाकर, मेरा भक्त हो, मेरा यजन-पूजन कर और मुझे नमस्कार कर। इस प्रकार मत्परायण होकर योग का अभ्यास करने से मुझे ही पावेगा।

हम छोटी बुद्धिवाले मनुष्य परमात्मा के अवतार संत-महापुरुषों को मानव तन-धारी होने के कारण साधारण मनुष्य की तरह समझकर हमें हर जगह अपनी बुद्धि ही विशेष लगती है। अतः हम सदियों से उनके बताये जाने पर भी उनके उपदेशानुकूल आचरण न कर चौरासी लाख योनियों के चक्कर में, आवागमन में पड़कर अपने अनमोल मानव तन का सदुपयोग नहीं कर पाते और उसी में पड़े रहने में ही खुश होते हैं। सत्संग और साधु समागम को अपनी छोटी बुद्धि का उपयोग कर छोटा समझते तथा देवी-देवता की पूजा को विशेष समझकर अपने तन का लाभ नहीं ले पाते। फिर भी जैसे माता-पिता बच्चों के कितनी गलतियाँ करने पर भी, अपमान करने पर भी जीवन-भर उन्हें सुधारने के लिए लगे रहते हैं। उसी प्रकार संत-महापुरुष हम जैसे नालायकों को किस तरह इस जीव का कल्याण हो, जानकर जीवन-पर्यन्त साधना करते हुए, अपमानित होते हुए भी उपदेश देते ही रहते हैं, तभी कहा है–

पितु सूँ माता सौ गुना, सुत को राखै प्यार ।
मन सेती सेवन करै, तन सूँ डाँट अरु गार ।।
माता सूँ हरि सौ गुना, जिनसे सौ गुरुदेव ।
प्यार करैं औगुन हरैं, चरणदास शुकदेव ।।

अब यहाँ जब खुद भगवन्त ही कहते हैं कि केवल देवी-देवताओं को पूजनवालों का मोक्ष नहीं होता, बल्कि वे हमेशा आवागमन के चक्र में पड़े रहते हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि हम देवी-देवताओं का अपमान

करें, बल्कि यह कि हम कितने भी अधिक बुद्धिमान होंगे, दस-पन्द्रह से ज्यादे देवताओं का पूजन नहीं कर पायेंगे। अतः भगवान श्रीकृष्ण एवं सभी संत-महापुरुषों का कथन (सुझाव) है कि हमारे यहाँ तैंतीस करोड़ देवी-देवता हैं। हम इन सबों का आंशिक रूप से पूजन करें, किसी को न छोड़ें। कारण हम दो-चार का करेंगे, तो बाकी देवता छूट जाने से हम सभी देवताओं के द्वारा पूर्ण लाभ नहीं ले पायेंगे। हमें पूर्ण लाभ तभी मिल सकता है, जब हम सभी देवताओं का पूजन करेंगे। उसके लिए हमें क्या करना है, तुलसी साहब कहते हैं–

पात-पात के सिंचवो, बरी-बरी के लोन।
तुलसी खोटे चतुरपन, कलि डहके कहु कोन॥

हम पत्ते को न सींचकर पेड़ की जड़ में पानी डाल दें। एक-एक पकौड़ी में नमक ने डालकर, पूरे बेसन में ही डाल दें। वह कैसे होगा? एक ईश्वर-भक्ति से। ईश्वर-भक्ति कैसे होगी? जैसा भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है–हममें से हर कोई भगवान श्रीकृष्ण की गीता का पाठ करते हैं, कितने तो इतने विद्वान होते हैं, पूरी गीता ही कंठस्थ होती है। किन्तु फिर भी हम केवल पाठ कर जलपान करने में विश्वास रखते हैं। गीता का सार क्या है? भगवान क्या कह रहे हैं, नहीं समझते। पाठ या पूजा तो तब सार्थक हुई, जब हम जिनकी आराधना करते हैं, उनकी आज्ञा का पालन करें।

अब हम देखें रामायण को, भगवान श्रीराम की भक्ति के विषय में जानें। रामचरितमानस सप्तम सोपान उत्तरकांड में गो० तुलसीदासजी क्या कहते हैं–

रामचन्द्र के भजन बिनु, जो चह पद निर्वान।
ज्ञानवन्त अपि सो नर, पसु बिन पूँछ विषान॥

रामचन्द्र के भजन बिना जो मनुष्य सुख पाना चाहते हैं, वह ज्ञानवान होने पर भी बिना पूँछ-सींग का पशु है। पूर्णिमा के सोलह चन्द्रमा उगें, तारेगणों के सब झुण्ड भी उगें, सब पर्वतों में आग लगा दी जाए; परन्तु बिना सूर्य के रात नहीं जाती। हे गुरुड़जी! इसी प्रकार

बिना हरि-भजन किये जीवों का क्लेश नहीं मिटता।

अब हम देखें, गो० तुलसीदासजी भजन किसे कहते हैं? क्या हम रामायण-पाठ करते हैं उसे, या हम रामायण की आरती कर लेते हैं उसे? नहीं, तब क्या कहते हैं? वे कहते हैं, जो भक्त वचन-अगोचर बुद्धि पर, अविगत, अकथ और अपार राम को वा निर्मल, निर्गुण और सहज आत्मरूप राम को जान लेता है, उसे भक्त कहते हैं और यही जानना भक्ति करनी है। अब हम उनसे पूछें कि यह जानना क्या है? और हम इसे कैसे जान सकते हैं?

गो० तुलसीदासजी ने यहाँ शरीरधारी राम के विषय में नहीं कहा है, वे तो राम के अंश से उत्पन्न सगुण रूपधारी भक्तों के कल्याण हेतु अवतार लिये थे। वे तो उस राम के बारे में कह रहे हैं, जो निर्गुण निराकार एवं सर्वव्यापक है। उनके अनुसार उन्हें ही जानना भक्ति है। बाकी तो हमारी जो भी है भक्ति की शुरुआत है, भक्ति नहीं। जैसे हम पढ़ाई के लिए नर्सरी क्लास में नामांकन करवाते हैं, वैसे ही पाठ करके हमलोग बैठना सिखते हैं। गहराई में तो जब जायेंगे, जब हमारी ज्ञान की आँखें खुलेंगी। उत्तरकांड में ही एक जगह उन्होंने इसकी विस्तार से चर्चा की है कि भजन क्या है?

औरउ एक गुप्त मत, सबहिं कहउँ कर जोरि।
संकर भजन बिना नर, भगति न पावइ मोरि॥

मैं सबको और एक गुप्त विचार कहता हूँ। वह यह है कि किरणों (चैतन्य वृत्तियों–सुरत की धारों) को जोड़कर कल्याण करनेवाला भजन किये बिना कोई मेरी भक्ति नहीं पाता है। इसे ही हमें विस्तार से जानना है। हमारे शरीर में चैतन्यवृत्ति या सुरत की धार ज्ञानमयी तथा प्रकाशमयी है। अतएव इसे ही किरण मानना चाहिए। अभ्यास करके गुरु भक्ति से इस कठिन भेद को जाना जा सकता है। गो० तुलसीदासजी और स्पष्ट कर देते हैं

भगत हेतु भगवान प्रभु, राम धरेउ तनु भूप।
किये चरित पावन परम, प्राकृत नर अनुरूप॥

प्रभु भगवान राम ने भक्तों को सुख देने के निमित्त राजा का शरीर धारण कर अत्यन्त पवित्र चरित्र साधारण मनुष्य की तरह किया।

यथा अनेकन वेष धरि, नृत्य करइ नट कोई ।
सोइ सोइ भाव देखावई, आपुन होय न सोई ॥

जैसे कोई बहुरुपिया अनेक रूप धरकर नाच करता और वही-वही भाव दिखाता है; परन्तु आप वह नहीं हो जाता है। जैसे नाटक का पात्र राजा का, देवता का अथवा ईश्वर का रूप बनाकर लीला दिखाता है, परन्तु वह यथार्थ में राजा वा देवता वा ईश्वर कुछ नहीं होता है, वह जो था, सो वही रहता है। उसी तरह निर्गुण निराकार आत्म-राम आकृति धारण करने से देवता वा मनुष्यादि नहीं हो जाते हैं, वे जो हैं, सो ही रहते हैं। इससे जानना चाहिए कि निर्गुण, निराकार आत्म-राम ने केवल लीला (नाटक) के हेतु विष्णु देव वा अवधेश का रूप धारण किया था–ये सभी रूप माया के थे। यथार्थ में वे न विष्णु हुए, न अवधेश, बल्कि जो थे सो ही रहे।

अतएव तुलसीदासजी स्पष्ट कहते हैं–जबतक उपर्युक्त मायिक रूपों से आगे बढ़कर निर्गुण निराकार, आत्मरूप राम को नहीं प्राप्त किया जाए, तबतक राम का पाना असंभव है। विष्णु रूप देव शरीर और रघुवर राम-रूप नर राजा शरीर कहीं-से-कहीं जाकर प्रकट और लोप होते हैं, न भ्रमण करते हैं। योग से ही ज्ञान की प्राप्ति होती है, जो योगी है, वे ही राम के सहज स्वरूप को जान पाते हैं। अतः उसे ही तुलसीदासजी हरिभक्त कहते हैं। यथार्थ में आत्मस्वरूप को जानना ही हरिभक्ति है। और उसी के बारे में कहा गया है कि गुप्तमत ये किरणों को कैसे जोड़ा जाए?

इसकी युक्ति गुरु के द्वारा ही जानी जा सकती है। भगवान् श्रीराम ने भी गुरु को ही विशेष महत्त्व दिया है। सच्चे गुरु के युक्ति बताये जाने से ही हम सच्ची हरि-भक्ति कर पायेंगे। भगवान् श्रीराम के दो गुरु–विश्वामित्रजी एवं वशिष्ठजी हुए। उनकी शिक्षा दीक्षा पाकर ही भगवान श्रीराम ने सारे कार्यों का सम्पादन किया। भगवान कृष्ण के भी दो गुरु हुए–संदीपन मुनि गर्गाचार्य। जब भक्ति के लिए भगवान कृष्ण

एवं भगवान श्रीराम को भी गुरु बनाने की आवश्यकता पड़ गयी, तो फिर हमलोग क्या हैं?

अब हम जिन भगवान शिव की आराधना करते हैं, हम देखें, वे क्या कहते हैं? भक्ति के संबंध में उनकी क्या राय है?

मर्यादा पुरुषोत्तम राम जब वाल्मीकि मुनि के आश्रम में पधारे और उन्होंने जिज्ञासा की मैं कहाँ रहूँ। तब मुनिजी ने कहा कि आप मुझसे पूछते हैं कि आप कहाँ रहें; लेकिन मुझे आपसे पूछने में संकोच होता है कि आप कहाँ नहीं हैं, जो मैं आपको रहने का स्थान बताऊँ?

राम स्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर ।
अविगत अकथ अपार, नेति-नेति नित निगम कह ॥

वाल्मीकि जी के समीप राम का रूप है; किन्तु वे राम के स्वरूप को देख रहे हैं। जिस तरह से कोई कुशल स्वर्णकार तरह-तरह के जेवर का महत्त्व न देकर सोने को ही देखता है, वैसे ही योगी निजरूप को देखते हैं, जेवररूपी शरीर को नहीं।

वह निजरूप कैसा होता है? संसार से विलक्षण होता है। संसार की जितनी चीजें हैं, बनती और बिगड़ती हैं, उनकी उत्पत्ति एवं विनाश होता है, लेकिन जो जग से विलक्षण है, उसकी उत्पत्ति नहीं होती, उसमें किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता। वह अविनाशी है, ऋषियों ने उसे (अमना) कहा है, वह मन से परे है। जो मन से परे है, उसमें विषमता कैसी? अब भगवान शिव की बातों को समझें, शिव का उपदेश है–

इदं तीर्थं इदं तीर्थं भ्रमन्ति तामसा जनाः ।
आत्मतीर्थं न जानन्ति कुतः मोक्षः शृणुप्रिय ॥

अर्थात् तामसी प्रवृत्ति के लोग यहाँ-वहाँ जाते हैं और कहते हैं–यह तीर्थ है, यह तीर्थ है। किन्तु आत्मतीर्थ को जाने बिना मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती है।

अब बताइये, जिन शंकर भगवान को हम जल और दूध चढ़ाकर रिझाना चाहते हैं, उनकी आज्ञा है–ध्यान करने की। तो क्या

उनकी आज्ञा का उल्लंघन करने से वे खुश होंगे? सर्वप्रथम भगवान शंकर ने ही इस साधना को करके तीसरे नेत्र का उन्मेष किया था, इसलिए उस आँख का नाम 'शिवनेत्र' पड़ गया और उन्हें त्रिलोचन कहा जाने लगा। जिसको तीसरी आँख मिल जाती है, उसकी दिव्यदृष्टि खुल जाती है। वाल्मीकि मुनि कहते हैं—हे राम! आप उनके हृदय में निवास कीजिए। तीसरा नेत्र खुलना ही शंकर-भजन है।

तब सिव तीसर नयन उघारा। चितवत काम भयउ जरि छारा ॥

(रामचरितमानस)

इसी भजन के लिए भगवान श्रीराम ने कहा है—

औरउ एक गुप्त मत, सबहिं कहउँ कर जोरि ।
संकर भजन बिना नर, भगति न पावइ मोरि ॥

हमने भगवान श्रीकृष्ण से जान लिया, राम से जान लिया एवं भगवान शिव से जान लिया, वेद एवं उपनिषद् की वाणी भी समझ ली। और भी देखें, शिव-संहिता में भगवान शिव ने क्या कहा है—

यः करोति सदा ध्यानमाज्ञापद्मस्य गोपितम्।
पूर्व जन्म कृतं कर्म विनश्येदविरोधतः॥

अर्थ—जो पुरुष सर्वदा गोपित करके इस आज्ञा-कमल (चक्र) का ध्यान करता है, उसका पूर्वजन्मकृत कर्मफल निर्विघ्न नाश हो जाता है। और देखें—

शिरः कपाले रुद्राक्षं विवरं चिन्तयेद् यदा ।
तदा ज्योतिः प्रकाशः स्याद् विद्युत् पुंजसमप्रभः ॥
एतत् चिन्तन मात्रेण पापानां संक्षयो भवेत् ।
दुराचारोऽपि पुरुषो लभते परमं पदम् ॥

अर्थात्—कपाल में शिवनेत्र के छिद्र पर जब ध्यान किया जाता है, तो विद्युत्पुंज (बिजलियों के समूह) के समान चमकता हुआ ज्योति-प्रकाश होता है। इसके चिन्तन मात्र (ध्यान) से पापों का नाश होता है और दुराचारी पुरुष भी परम पद को प्राप्त करता है।

ज्ञानसंकलिनीतंत्र से अब हमें आगे श्रीकालीप्रसन्न विद्यारत्न महाशयजी भक्ति के लिए क्या बतलाते हैं, उसे देखें—

देहस्थाः सर्व्वविद्याश्च देहस्थाः सर्व्वदेवताः ।
देहस्थाः सर्व्वतीर्थानि गुरुवाक्येन लभ्यते ॥

अर्थ—इस देह में सब विद्या, सब देवता और सब तीर्थ विराजमान हैं। केवल गुरु के उपदेश से ही देहस्थित ये सब विद्या, देवता और तीर्थ जाने जाते हैं।

जब हमारे शरीर में ही सारी विद्या, सारे देवता और सारे तीर्थ विद्यमान हैं, तो हमें कहीं भी बाहर दौड़ने से कुछ प्राप्त हो सकता है क्या? कभी नहीं। अब हम सभी श्रीमद्भागवत के भक्त हैं, अतः अब हम देखें कि भागवत में भक्ति के बारे में किस तरह की पूजा स्कन्ध १०, उत्तरार्ध में करनी लिखी गयी है—

ब्राह्मे मुहूर्ते उत्थाय वार्युपस्पृश्य माधवः।
दध्यौ प्रसन्नकरण आत्मानं तमसः परम्॥ ४॥ अ० ७०॥

अर्थ—भगवान श्रीकृष्ण प्रतिदिन ब्राह्म मुहूर्त में ही उठ जाते और हाथ-मुँह धोकर अपने मायातीत आत्मस्वरूप का ध्यान करने लगते। उस समय उनका रोम-रोम आनन्द से खिल उठता था।

उन्होंने (कृष्ण भगवान ने) केवल कहा ही नहीं, बल्कि स्वयं भक्ति करके दिखलायी और हमारे सामने उदाहरण पेश किया और यह भी बताया कि कैसे करना है।

श्रीभगवानुवाच—सम आसन आसीनः समकायो यथासुखम्।
हस्तावुत्संग आधाय स्वनासाग्र कृतेक्षणः॥ ३२॥

अर्थ—श्री भगवान बोले—हे उद्धव! सुख-पूर्वक सम आसन से शरीर को सीधा रखकर बैठे; हाथों को तर-ऊपर गोद में रखे और दृष्टि को नासिका के अग्रभाग में स्थिर करे।

यहाँ उन्होंने हर चीज को पूरी तरह स्पष्ट कर दिया, अब समझने के लिए क्या बाकी रहा। हम आगे चलें। हम माँ दुर्गा के भक्त हैं, उनकी क्या राय है? उनके पाठ में क्या है? हम इसे जानें। केवल पाठ दोहराने से क्या फायदा? जैसे हम डॉक्टर का पूर्जा नित्य सुबह-शाम पढ़ें एवं दवा का सेवन न करें, तो हमें कभी भी कोई लाभ उस दवा से नहीं मिल सकता। इसी तरह हम केवल उनकी पुस्तक का पाठ करते रहें और उनका उपदेश न मानें, उनकी आज्ञा की अवहेलना

करें, लाभान्वित होंगे? उस पाठ में है–

शब्दात्मिका सुविमलर्ग्यजुषान्निधान-
मुद्गीथरम्यपदपाठवतां च साम्नाम्।
देवी त्रयी भगवती भवभावनाय
वार्त्ता च सर्वजगतां परमार्त्तिहन्त्री ॥ १०॥

श्रीयुक्त पण्डित रामनारायण शर्मा, प्रोफेसर टी०एन०जे० कॉलेज, भागलपुर कृत अर्थ–

हे देवि ! आप शब्दात्मिका हैं। शब्द है आत्मा (अर्थात् स्वरूप) जिसकी, वह हुई शब्दात्मिका। आत्मन् के अनेक अर्थों में स्वरूप भी एक अर्थ है।

आप अत्यन्त निर्दोष ऋक् और यजुः के निधान हैं तथा उद्गीथों के द्वारा रमणीय पद और पाठवाले (अथवा पदों के पाठवाले) साम के भी निधान (निधि, खजाना) हैं। आप (साक्षात्) त्रयी देवी हैं।

देवी के शब्दात्मिका होने से अभिप्राय–मीमांसकों और वैयाकरणों ने शब्द को नित्य माना। पतंजलि ने महाभाष्य में शब्द की परब्रह्म से समता दिखाई है।

शब्द ही परमात्मा है, यही सभी संतों ने भी ध्यान के द्वारा प्राप्त कर बताया है। यह शब्दरूप ब्रह्म आदि और अंत-रहित है। इसी शब्दब्रह्म से जगत् की रचना होती है। जो पुरुष शब्दब्रह्म को ठीक-ठीक अवगत कर लेता है, वह परब्रह्म को पाता है अर्थात् उसमें अवस्थित होता है।

क्या पाठ दोहराने से हमारी दुर्गा माँ प्रसन्न होंगी? नहीं। उन्होंने स्पष्ट कर दिया, उनको प्रसन्न करने के लिए शब्द की प्राप्ति करनी होगी, उनकी साधना करनी होगी। जो होगा गुरु-युक्ति द्वारा ध्यान कर। टिप्पणी–श्री-श्री देवीजी का सर्वोत्कृष्ट स्वरूप जिसकी उपासना की जा सके, शब्द को ही मानना पड़ता है।

अबतक हमने रामायण, गीता, भागवत, शिवपुराण, दुर्गासप्तशती सभी कुछ छान मारा। सबों में भक्ति की गहराई ध्यान से ही पाना बताया गया है। अब हम राम-भक्त हनुमान (ललाजी) की ओर नजर करें। हनुमानजी जितने बड़े भक्त राम थे, शायद और दूसरे कोई नहीं

होंगे, फिर भी रामजी ने हनुमानजी को उपदेश दिया। मुक्तिकोपनिषद् में आया है–

बहुशास्त्रकथाकन्थारोमन्थेन वृथैव किम्।
अन्वेष्टव्यं प्रयत्नेन मारुते ज्योतिरान्तरम्॥ ६३॥

भावार्थ–बहुत-से शास्त्रों की कथाओं को मथने से क्या फल ? हे वायुसुत! अत्यन्त यत्नवान होकर केवल अन्तर की ज्योति की खोज करो।

दर्शनादर्शने हित्वा स्वयं केवलरूपतः।
य आस्ते कपिशार्दूल ब्रह्म स ब्रह्मवित्स्वयम्॥ ६४॥

भावार्थ–हे कपिशार्दूल ! दृश्य और अदृश्य को त्यागकर (पुरुष) कैवल्य-स्वरूप हो जाता है। वह केवल ब्रह्मज्ञानी नहीं, बल्कि स्वयं ब्रह्म ही है।

मूल–अधीत्य चतुरो वेदान्सर्वशास्त्राण्यनेकशः।
ब्रह्मतत्त्वं न जानाति दर्वी पाकरसं यथा॥ ६५॥

भावार्थ–वह, जिसने चारो वेदों और सब शास्त्रों को पढ़ा हो, पर ब्रह्म-तत्त्व न जाना हो, पाक (पके हुए भोजन) के स्वाद को न जाननेवाले कलछुल के तुल्य है।।६५॥

मूल–अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथाऽरसं नित्यमगन्धवच्च यत्।
अनामगोत्रं मम रूपमीदृशं भजस्व नित्यं पवनात्मजार्त्तिहन्॥ ७२॥

भावार्थ– हे पवनतनय ! अशब्द, अस्पर्श, अरूप, अविनाशी, अस्वाद, अगन्ध, अनाम और गोत्रहीन, दुःखहरण करनेवाले मेरे इस तरह के रूप का तुम नित्य भजन करो।

अब उन्होंने भगवान श्रीराम ने यहाँ पूरी तरह स्पष्ट कर दिया है कि तुम मेरी जो ये स्थूल सेवा कर रहे हो, केवल इससे तुम्हारा कल्याण नहीं हो सकता। तुम्हें मेरे निर्गुणस्वरूप (आत्मस्वरूप) का ध्यान करना होगा। जबकि हनुमानजी के जैसी सेवा और कोई सेवक कर ही नहीं सकता। अब बताइये हम खुद ही निर्णय करें कि हमें कौन-सा भजन, कौन-सी भक्ति, कौन-सी पूजा करनी चाहिए।

अब हम अपने पूज्य गुरुदेव महर्षि संतसेवी परमहंसजी महाराज एवं अन्य महापुरुषों के द्वारा अपने भ्रमित और पागल मन का इलाज करें।

४. महर्षि संतसेवी परमहंस

आदरणीय सज्जनवृन्द तथा आदरणीया माताओ एवं भक्तिमती बहनो!

प्रत्येक प्राणी सुख चाहता है, शांति चाहता है, कल्याण चाहता है। कल्याण एक दिन के लिए नहीं, शांति एक दिन के लिए नहीं, सुख एक दिन के लिए नहीं, सदा के लिए सुख चाहिए, सदा के लिए कल्याण चाहिए। किन्तु परम प्रभु की भक्ति के बिना न तो परम सुख की प्राप्ति होती है, न तो शाश्वत शांति की प्राप्ति होती है और न परम कल्याण की प्राप्ति होती है। इसलिए संतमत ईश्वर-भक्ति का प्रचार करता है; किन्तु यह ईश्वर की भक्ति अंधी भक्ति नहीं, ज्ञान-योग-युक्त है। इसलिए सबसे पहले जान लेना चाहिए कि ईश्वर स्वरूपतः कैसा है। वह स्वरूपतः अनंत होने के कारण सूक्ष्मतम है। हमलोग जो बाहरी और आंतरिक किसी भी इन्द्रिय के द्वारा उस परमात्मा को ग्रहण करना चाहते हैं, यह सर्वथा अयोग्य है; क्योंकि स्थूल यंत्र से सूक्ष्म तत्त्व का ग्रहण नहीं हो सकता। सूक्ष्म यंत्र से ही सूक्ष्म तत्त्व का ग्रहण हो सकना संभव है। यह जीवात्मा सूक्ष्म है और परमात्मा भी सूक्ष्म है। ये दोनों ही सूक्ष्मतम है। इसलिए जीवात्मा के द्वारा ही परमात्मा की प्राप्ति होती है। परमात्मा के स्वरूप का वर्णन करते हुए गोस्वामीजी ने कहा है–

राम स्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर।
अविगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह ।।

एक होता है रूप, दूसरा होता है सरूप और तीसरा होता है स्वरूप। इस आँख के द्वारा जो देखा जाता है, उसको रूप कहते हैं। रूप के सहित जो रहता है, उसको सरूप कहते हैं और जो निज रूप है, आत्मरूप है, उसी को स्वरूप कहा गया है। उस निज रूप की चर्चा गोस्वामीजी ने 'विनय-पत्रिका' में इस भाँति की है–

अनुराग सो निजरूप जो, जग तें विलच्छन देखिये।
सन्तोष सम सीतल सदा दम, देहवन्त न लेखिये ।।
निर्मल निरामय एकरस, तेहि हरष सोक न व्यापई।
त्रयलोक पावन सो सदा, जाकी दसा ऐसी भई ।।

यहाँ अनुराग से जो रूप देखा जाता है, वह निज रूप ही है।

वह संसार से विलक्षण है। संसार में ऐसी कोई चीज नहीं है, जिससे उसकी उपमा दी जा सके। हमारे गुरुदेव के वचन में आया है–

जो जगत से विलक्षण, जिसमें न विषय लक्षण।
जो एकरस सकल क्षण, तिसमें मुझे रमा दो ।।

जगत् की जितने चीजें होती हैं, वे बनती और बिगड़ती हैं। जो बनता और बिगड़ता है, वह माया है। जो बने नहीं, वह बिगड़े कैसे? वह निर्मायिक तत्त्व परमात्मा है। वह आँख का विषय रूप नहीं है, कान का विषय शब्द नहीं है, जिह्वा का विषय रस नहीं है, त्वचा का विषय स्पर्श नहीं है, नासिका का विषय गंध नहीं है। अर्थात् पंच ज्ञानेन्द्रियों से ग्रहणीय विषय परमात्मा नहीं है। इसीलिए गोस्वामीजी ने 'जग ते विलक्षण देखिये' कहा। वह परमात्मा संतोषस्वरूप है। उसको ही प्राप्त कर लेने पर संतोष मिलता है। जबतक संतोष नहीं होता, इच्छा का नाश नहीं होता। गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है–

बिनु संतोष न काम नसाहीं। काम अछत सुख सपनेहु नाहीं ।।
राम भजन बिनु मिटहिं कि कामा। थल विहीन तरु कबहुँ कि जामा ।।

जिस तरह बिना मिट्टी का वृक्ष नहीं जमता है, उसी तरह जबतक कामनाओं का अंत नहीं होगा, तबतक स्वप्न में भी सुख नहीं मिल सकता। जब कामनाओं का अंत होता है, तभी शाश्वत सुख की प्राप्ति होती है, चिर शांति मिलती है, परम कल्याण होता है और परम प्रभु परमात्मा की प्राप्ति होती है। जबतक कोई मनोनिरोध नहीं करे, जबतक कोई इन्द्रिय-निग्रह नहीं करे, तबतक वह उस प्रभु को नहीं प्राप्त कर सकता है। इसी मनोनिग्रह और इन्द्रिय-निग्रह के लिए दृष्टियोग और नादानुसंधान की क्रियाएँ हैं। इस विषय को गोस्वामी तुलसीदासजी ने इस भाँति समझाने की चेष्टा की है–

लोचन चातक जिन्ह करि राखे। रहहिं दरस जलधर अभिलाखे ।।
निदरहिं सरित सिन्धु सर भारी। रूप बिन्दु जल होहिं सुखारी ।।
तिनके हृदय सदन सुखदायक। बसहिं अनुज सिय-सह रघुनायक ।।

चातक पक्षी आकाश में स्वाति-बूँद की प्रतीक्षा करता रहता है। वह बड़ी-बड़ी नदियों, झीलों, तालाबों और समुद्रों को अनादृत करता

है यानी वह उनका जल नहीं पीता है, जब स्वाति-बूँद मिल जाती है, तब उसका पान करके तुष्ट होता है। किसी कवि ने बड़ा ही अच्छा कहा है–

सरवर नीर न पीवई, स्वाति बूँद को आस।
केहरि कबहु न तृण चरे, जो व्रत करै पचास॥
जौं व्रत करै पचास, विपुल गज जूह विदारै।
धन है गर्व न करै, निर्धन नहिं दीन उचारै॥
नरहरि कुल के भाय, मिटै नहिं जब लग जीये।
बरु चातक मरि जाय, नीर सरवर नहिं पीये॥

सरोवर के किनारे चातक पक्षी है; लेकिन जबतक स्वाति की बूँद नहीं मिलेगी, तबतक वह अन्य किसी प्रकार का जल नहीं पियेगा, चाहे वह मर क्यों न जाय। अंतस्साधना का साधक चतुर्भुजी, अष्टभुजी, अनेकभुजी अथवा आश्चर्यमय तेजपुंज से पूरित कोई रूप क्यों न हो, उस ओर वह आकर्षित नहीं होता–उससे वह पृथक् रहता है।

चौभुज औ अष्टभुज जो, अथवा अनेकभुज जो।
आश्चर्य तेजपुंज जो, सबसे सुरत फुटा दो॥

(महर्षि मेँहीं-पदावली)

वह साधक प्रभु के विभिन्न विभूतियों को देखते और छोड़ते हुए मात्र विन्दु पर अपने को प्रतिष्ठित कर रखता है। अंतस्साधक के समक्ष विभिन्न प्रकार की ज्योतियाँ, विभिन्न प्रकार के प्रलोभन आते हैं। विभिन्न प्रकार की ऋद्धि-सिद्धियाँ भी आती हैं; लेकिन वह उनके फेर में नहीं पड़ता है। वह अपने को विन्दु पर टिकाकर रखता है, उसी की वह अभिलाषा करता है। नररूप, देवरूप या विश्वरूप किसी भी रूप की वह इच्छा या प्रतीक्षा नहीं करता। वह तो मात्र प्रभु से मिलना चाहता है। जो विन्दुरूप को प्राप्त करता है, वही एक दिन करुणा-सिन्धु प्रभु को पाकर भवसिन्धु को पार कर सकता है। जो साधक भक्त विन्दुरूप का दर्शन नहीं कर सकता, वह भवसिन्धु पार नहीं हो सकता। इस दृष्टियोग की क्रिया से इन्द्रिय-निग्रह होता है। मनोनिरोध के लिए नादानु- संधान की क्रिया की जाती है। इस विषय में

गोस्वामीजी का कथन है–

"जाके श्रवण समुद्र समाना। कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना॥
भरहिं निरन्तर होहिं न पूरे। तिनके हिय तुम्ह कहँ गृह रूरे॥"

बहती हुई नदियाँ समुद्र में जाकर मिल जाती हैं। चाहे कितनी भी नदियाँ समुद्र में क्यों न मिलें, समुद्र भरपूर नहीं होता, उसी तरह अंतस्साधक अपने अंदर के विविध नादों का श्रवण करता है, ग्रहण करता है; किन्तु कितने भी नाद क्यों नहीं हों, उनसे वह तुष्ट नहीं होता है। तुष्ट तब होता है, जब उसको सारशब्द की प्राप्ति होती है। वह सदा उस अंतर्नाद में रत रहता है–उसमें वह लीन रहता है, अघाता नहीं। साधक सारशब्द को प्राप्त करके प्रभु के दर्शन करता है; प्रभु से मिलाप करता है, तुष्ट होता है–संतुष्ट होता है–तृप्त होता है।

जागतिक जितनी भी चीजें हैं, वे सभी हमसे छूट जाती हैं अथवा हम उन चीजों को छोड़कर चले जाते हैं। संसार की यही रीति है। मिलन के बाद बिछुड़न होता ही है; लेकिन जो कोई उन प्रभु से एक बार मिल जाता है, तो फिर उसका उनसे बिछुड़न कभी होता ही नहीं है। यह विलक्षणता है और वास्तविकता भी है। इसलिए 'तिनके हृदय सदन सुख दायक' कहा। मानस में एक स्थल पर ऐसा भी कहा गया है–

"प्रकृति पार प्रभु सब उर वासी। ब्रह्म निरीह बिरज अविनासी॥"

उन उरवासी प्रभु के दर्शन करके ही वाल्मीकिजी ने श्रीराम के लिए वैसा कहा। 'कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं' कहने का तात्पर्य यह है कि ईश्वर कहाँ नहीं है? सर्वत्र है। सर्वत्र होने पर भी उनके दर्शन जब कभी होंगे, तो अपने ही अंदर होंगे। तभी बाहर में भी दर्शन होंगे। संत चरणदासजी महाराज ने नादानुसंधान की महिमा गाते हुए कहा है–

जब से अनहद घोर सुनी।
इन्द्री थकित गलित मन हूआ, आशा सकल भुनी॥
घूमत नैन शिथिल भइ काया, अमल जो सुरत सनी।
रोम रोम आनन्द उपज करि, आलस सहज भनी॥
मतवारे ज्यों शब्द समाये, अंतर भींज कनी।
करम भरम के बन्धन छूटे, दुविधा विपति हनी॥

आपा विसरि जक्त कूँ विसरो, कित रहि पाँच जनी।
लोक भोग सुधि रही न कोई, भूले ज्ञानि गुनी॥
हो तहँ लीन चरण ही दासा, कहै शुकदेव मुनी।
ऐसा ध्यान भाग सूँ पैये, चढ़ि रहै शिखर अनी॥

संत चरणदासजी महाराज कहते हैं कि जबसे मैंने आंतरिक नादों का श्रवण किया, तबसे मेरी सभी इन्द्रियाँ थक गयीं, मन गल गया और सभी आशाएँ जल-भुनकर समाप्त हो गयीं।

"घूमत नैन शिथिल भइ काया, अमल जो सुरत सनी।
रोम रोम आनन्द उपज करि, आलस सहज भनी॥"

हमारी आँखें जो बाहर में घूमती थीं, हमारी वृत्तियाँ जो बाहर में फैली हुई थीं, वे घूम गयीं। अर्थात् उलट गयीं–बाहर से अंतर्मुख हो गयीं–पिण्ड से ब्रह्मांड में चली गयीं। शरीर शिथिल हो गया अर्थात् निश्चेष्ट हो गया। भगवान महावीर बैठे थे ध्यान करने के लिए। ध्यान करने में वे इतने लीन हो गये कि जिस वस्त्र को पहनकर वे ध्यान करने के लिए बैठे थे, वह गल गया। वे दिगम्बर हो गये। बाहर की कुछ भी सुधि नहीं रही। आज जैनधर्म में श्वेताम्बर और दिगम्बर दो दल हो गये हैं। श्वेत वस्त्र पहनकर भगवान महावीर ध्यान करने के लिए बैठे थे। इस दृष्टि से एक संस्था अपना नाम श्वेताम्बर और भगवान महावीर के वस्त्रविहीन हो जाने के कारण दूसरी ने अपना नाम दिगम्बर रख लिया। इस संस्था के लोगों ने निर्वस्त्र को निर्ग्रन्थ की संज्ञा दी। वास्तव में निर्ग्रन्थ तो उनको कहते हैं, जिनके हृदय की जड़-चेतन-ग्रंथि प्रहीण हो गयी हो। लेकिन सत्संग के अभाव में, सच्चे गुरु के अभाव में कुछ लोग यही समझने लग गये कि शरीर पर वस्त्र नहीं रहने के कारण निर्ग्रन्थ हो गये।

अपने अंदर में जड़ और चेतन की ग्रंथि पड़ी है। जब जड़ और चेतन की ग्रंथि खुल जाती है, तब परम प्रभु परमात्मा के दर्शन होते हैं और तभी कोई निर्ग्रन्थ होता है। ऐसे साधक के रोम-रोम में आनंद उपजता है, आलस्य का वहाँ प्रश्न ही नहीं रहता। जिस तरह जोरों की वर्षा होती है, तो पृथ्वी के कण-कण में पानी समा जाता है, उसी तरह

साधक साधना करता है, अंतर्नाद की उपासना करता है, तो इतनी प्रसन्नता होती है, इतना आनंद होता है कि उसका वर्णन नहीं हो सकता। नादानुसंधान की साधना का परिणाम क्या हुआ, इसपर कहते हैं–

'करम भरम के बंधन छूटे, दुविधा विपत्ति हनी।'

अर्थात् जड़ और चेतन का जो बंधन था, वह टूट गया। भगवान बुद्ध ने कहा–'ऐ गृह के निर्माण करनेवाले! मैंने तुझे देख लिया। अब तू गृह नहीं बना सकता। गृह का शिखर गिर गया। सब कड़ियाँ टूट गयीं। चित्त संस्कार-रहित हो गया। तृष्णाओं का क्षय हो गया।' तो उन्होंने भी इस तरह की साधना की थी, जिस किसी ने इस नादानुसंधान की साधना की, उसने परम प्रभु परमात्मा को पाया। परमात्मा को पानेवाला जड़-चेतन की ग्रंथि में क्यों रहेगा? जहाँ प्रभु के साक्षात् दर्शन हों, वहाँ दुविधा और दुःख का स्थान कहाँ?

आपा को भूलने पर संसार विस्मृत हो गया। पाँचो ज्ञानेन्द्रियाँ कहाँ छूट गयीं, कुछ पता नहीं। लोक-भोगों की वासना समाप्त हो गयी। वास्तविक बात तो यह है कि इन्द्रियों के द्वारा विषयों का ग्रहण होता है। जहाँ इन्द्रियाँ ही नहीं, वहाँ विषयोपभोग करेगा तो कौन?

हो तहँ लीन चरण ही दासा, कहै शुकदेव मुनी।
ऐसा ध्यान भाग सूँ पैये, चढ़ि रहै शिखर अनी॥

श्रीशुकदेव मुनि संत चरणदासजी महाराज से कहते हैं। नादानुसंधान–सुरत-शब्द-योग का साधक शब्द के शिखर पर चढ़ जाता है। अर्थात् ॐ–स्फोट–प्रणव ध्वनि को पा लेता है। किन्तु ऐसा ध्यान भाग्यवान को ही मिलता है।

इस नादानुसंधान के संदर्भ में वाल्मीकि मुनि जी ने संकेत किया है। उपर्युक्त चौपाइयों के द्वारा साररूप में यही बतलाया गया है कि दृष्टि-साधन अच्छी तरह करें। इस साधना में सफलता मिलने पर नादानुसंधान करने की योग्यता होती है और नादानुसंधान की परिपूर्णता में परम प्रभु परमात्मा की प्राप्ति होती है। फिर चिरशांति, परम कल्याण और शाश्वत सुख की प्राप्ति होती है। यही थोड़ा-सा आपलोगों की सेवा में कहा। ❒

५. स्वामी विवेकानन्द की वाणी

स्वामी विवेकानंदजी के भक्ति के विषय निम्न विचार हैं–

जब नचिकेता के पिता ने क्रोधित होकर नचिकेता को यमराज के लिए दान कर दिया। तब नचिकेता यमराज के यहाँ चला गया उस वक्त यमराजजी घर पर नहीं थे। वे तीन दिनों के बाद लौटे। घर पर अतिथि को तीन दिनों से भूखा देखकर, उसे बहुत दुःख हुआ और उन्होंने नचिकेता को तीन वरदान माँगने को कहा। दो तो नचिकेता ने सांसारिक वस्तु की माँग की; किन्तु तीसरे में उन्होंने आत्मज्ञान बताने के लिए प्रार्थना की। यमराजजी ने कहा–इसके बदले तुम्हें जो चाहिए, ले लो, पर आत्मज्ञान को छोड़ दो। नचिकेता ने कहा–आत्मज्ञान ही केवल शाश्वत ज्ञान है और तो कुछ भी शाश्वत नहीं। मुझे वही चाहिए, बाकी तो सभी नाशवान है।

हे नचिकेता! यह आत्मदर्शन-यह तत्त्वज्ञान बहुत ही कठिन विषय है। यह मार्ग बहुत विस्तृत है। निर्दिष्ट स्थान तक पहुँचना कोई आसान काम नहीं। जिन्हें बहुत ही सूक्ष्म दृष्टि मिली है, केवल वे ही उसका दर्शन कर पाते हैं, वे ही उसको समझते हैं। परन्तु इसमें निराश होने की बात नहीं है; उठो, जागो और कर्म-निरत होओ। जबतक लक्ष्य पर न पहुँच सको, अपने उद्योग में शिथिलता मत आने दो। तत्त्ववेत्ताओं का मत है कि यह मार्ग इतना कठिन है कि इस पर चलना क्षुरे की धार पर चलने के समान है। जो हर तरह की विषय-वासना, रूप, रस और स्पर्श से परे है, जो सदा समान अवस्था में रहता है, जो आदि-अन्त से रहित है, जो अभेद्य और अखण्ड्य है, साथ ही बुद्धि के द्वारा भी गम्य नहीं है, उसी को–केवल उस सर्व-नियन्ता को हृदयंगम करके मनुष्य मृत्यु के मुख से अपनी रक्षा कर पाता है।

इस प्रकार यम ने नचिकेता को वह लक्ष्य-स्थान बतलाया, जिस पर पहुँचना मनुष्यमात्र का कर्त्तव्य है। यम के इन उपदेशमय वाक्यों से पहली बात जो हमें ज्ञात होती है, वह यह है कि जन्म, मृत्यु, दुःख, क्लेश तथा मन को चंचल करनेवाले अन्यान्य विषयों पर जिनका कि संसार में हमें सामना करना पड़ता है, सत्य का ज्ञान प्राप्त करने पर ही विजय मिल सकती है। सत्य क्या है? जो सदा एक रूप

में ही रहता है, जिसमें कभी किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता। वह है मनुष्य की आत्मा।

बाद को यह बात बतलाई गई है कि उसे जानना आसान काम नहीं है। जानने का तात्पर्य केवल बौद्धिक ज्ञान से नहीं है। इसकी निष्पत्ति तो तभी हो पाती है, जबकि मनुष्य को सिद्धि मिल जाय। यह हम बार-बार पढ़ चुके हैं कि इस मोक्ष का हमें प्रत्यक्ष करना, अनुभव करना है। उसे हम नेत्रों से नहीं देख पाते। उसका प्रत्यक्ष अनुभव भी बहुत ही सूक्ष्म होता है। जिसके द्वारा दीवार तथा पुस्तकें आदि दृष्टिगोचर होती हैं, वह तो स्थूल है। परन्तु वह प्रत्यक्ष जिसके द्वारा सत्य की अनुभूति होती है, उसे बहुत सूक्ष्म होना चाहिए। और वही इस ज्ञान का सारा रहस्य है। इसके बाद यम कहते हैं कि मनुष्य को बहुत ही विशुद्ध होना चाहिए। यह विशुद्धता ही उस सर्व-नियन्ता की अनुभूति का मार्ग है। आगे चलकर वे हमें उस आत्मा–ब्रह्म की प्राप्ति के और मार्ग बतलाते हैं।

वह स्वयंभू इन्द्रियों से बहुत दूर है। इन्द्रियाँ वह करण अर्थात् यंत्र हैं, जो बाह्य जगत को ही देखती हैं, परन्तु वह स्वयंभू आत्मा अन्तर्दृष्टि से ही देखा जाता है। तुम्हें यह स्मरण रखना चाहिए कि जिज्ञासु–इस तत्त्व के जानने की अभिलाषा रखनेवाले के लिए जो योग्यता अपेक्षित है, वह है दृष्टि को भीतर की ओर आकर्षित करके आत्मा को जानने की अभिलाषा। इस प्रकृति में हम जिन मनोहर वस्तुओं को देखते हैं, वे बहुत ही सुन्दर हैं। परन्तु उनकी ओर अवलोकन करना ईश्वर के दर्शन का मार्ग नहीं है। हमें यह सीखना चाहिए कि हम अपनी दृष्टि को किस प्रकार अन्तर्मुखी कर सकते हैं। नेत्रों की बाह्य जगत को देखने की अभिलाषा को निवृत्त कर देना चाहिए। जब आप किसी ऐसी सड़क पर, जिस पर कि भीड़-भाड़ अधिक होती है, चलते हैं, तो आपको अपने साथी की बातचीत सुनने में बड़ी कठिनाई पड़ती है। बात यह है कि उस सड़क पर जो इक्के-गाड़ियाँ चलती हैं, उनकी घड़घड़ाहट से वहाँ बड़ा कोलाहल मच जाता है। वहाँ इतना कोलाहल होता है कि आपका साथी भी आपकी बातें नहीं सुन पाता। बात यह है कि आपका मन दूर की

बातों में लग जाता है और आप अपने पास के आदमी की बात नहीं सुन पाते। ठीक इसी प्रकार हमारे आस-पास जो संसार परिव्याप्त है, वह इतना कोलाहल करता है कि मन को बाहर की ओर खींच ले जाता है। तब भला हम आत्मा को कैसे देख सकें ? वह तो अन्तर्दृष्टि से परिदर्शित होता है । उसकी बाहर जाने की प्रवृत्ति रोक दी जानी चाहिए नेत्रों को अभ्यन्तर की ओर फेरने का यही तात्पर्य है। उनकी बहिर्भूत होने की प्रवृत्ति जब जाती रहेगी, तब उनमें केवल उस सर्वनियन्ता की ही महिमा परिलक्षित हो सकेगी ।

आत्मा क्या है? हम यह पढ़ चुके हैं कि यह बुद्धि से भी परे है। साथ ही, यह भी पढ़ चुके हैं कि यह आत्मा शाश्वत और सर्वव्यापी जीव है । आत्मा भी निर्लेप और निर्विकार है। उसमें किसी प्रकार का परिवर्तन संभव नहीं है। इस प्रकार विभु, सर्वव्यापी जीव केवल एक ही हो सकता है । ऐसे दो जीव नहीं हो सकते, जो कि समान रूप से ही सर्वव्यापक हो सकें । यह कैसे संभव है? इस तरह की दो सत्ताएँ नहीं हो सकतीं, जो अनन्त हों । इस बात से यह परिणाम निकलता है कि वास्तव में एक ही आत्मा है और हम, आप तथा समस्त विश्व एक होते हुए भी अनेक रूपों में परिलक्षित होते हैं। जिस तरह एक ही अग्नि संसार में प्रवेश करके अपने आपको ही भिन्न-भिन्न मार्गों में व्यक्त करती है, ठीक वैसे ही यह आत्मा प्राणिमात्र की आत्मा होकर अपने आपको विविध आकारों में प्रदर्शित करती है । अब यह प्रश्न उदय होता है कि यदि यह आत्मा निर्दोष और विशुद्ध है और समस्त विश्व की एकमात्र सत्ता है, तो इसके किसी पापी और दुराचारी या धर्मिष्ठ और सदाचारी शरीर में प्रवेश करने पर इसकी क्या गति होती है? यह निर्विकार किस तरह रह सकती है?

प्राणिमात्र के नेत्रों में जो दृष्टि-शक्ति होती है, उसके एकमात्र कारण सूर्य हैं । किन्तु यदि किसी को नेत्र-दोष होता है, तो वह अपने उस दोष की छाया सूर्य पर डालने में समर्थ नहीं हो पाता । यदि किसी को पाण्डु रोग हो गया होता है, तो उसे सारी वस्तुएँ पीली-ही-पीली दृष्टिगोचर होती हैं । उस व्यक्ति की भी दृष्टि-शक्ति के कारण सूर्य ही हैं, किन्तु उसके नेत्रों में हर एक वस्तु को पीली देखने का जो गुण

है, वह सूर्य को तो नहीं स्पर्श कर पाता। इसी तरह यह एकमात्र जीवात्मा प्रत्येक प्राणी के शरीर में व्याप्त रहकर भी बाहर की पवित्रता या अपवित्रता के संस्पर्श से बचा रहता है।

इस क्षणभंगुर संसार में जो उस सनातन को जानता है, इस अचेतन जगत् में जो उस एक चेतन को समझता है, इस बहुत्वमय ब्रह्माण्ड में जो उस एक रूप को जानता है, और उसे अपने अन्तःकरण में देखता है, वही उस चिरन्तन परमानंद का अधिकारी होता है, दूसरा नहीं । जहाँ सूर्य नहीं प्रकाशित होते, चन्द्रमा, तारागण तथा विद्युत की भी प्रभा नहीं दिखाई पड़ती, फिर भला अग्निशिखा का पूछना ही क्या? उसके प्रकाशमान होने पर सभी वस्तुएँ प्रकाशमान होती हैं । जब मनुष्य के हृदय को क्लेश देनेवाली सभी अभिलाषाओं का अन्त हो जाता है, तब जरा-मरणशील प्राणी अमर हो जाता है। उस दशा में ही उसे ब्रह्म की प्राप्ति होती है। जब हृदय के सारे कल्मष विलीन हो जाते हैं, जब उसकी सारी ग्रन्थियाँ विनष्ट हो जाती हैं, केवल तभी यह जरा-मरणशील मानव अमर हो पाता है। यही उसके अमर होने, मुक्त होने का मार्ग है। इस विषय का अध्ययन हमें फलदायक हो! इस विषय का चिन्तन हमारे लिए फलदायक हो, यह हमारा भजन हो, यह हमारे शरीर का बल हो, हम एक-दूसरे को घृणा की दृष्टि से न देखें, सबलोग शान्तिपूर्वक निवास करें।

६. साधना में सफलता कैसे?

परमात्मा ने जो सृष्टि की है। मानवमात्र को एक-सा बनाया है। चाहे वे हिन्दू हो, मुसलमान हो, ईसाई हो, जैन, बौद्ध, सिक्ख हों आदि जितने भी मानव मात्र हैं सबकी रचना एक-सी है। परमात्मा ने सबको देखने के लिए आँखें दी हैं, सुनने के लिए कान दिये हैं। गंध ग्रहण करने के लिए नासिका दी है, रसास्वादन के लिए जिभ्या दी है। स्पर्श करने के लिए त्वचा दी है, भोजन करने के लिए मुँह दिया है, किसी भी जाति, किसी भी पाँति, किसी भी धर्म, किसी भी मजहब, किसी भी देश के क्यों न हों, परमात्मा ने सबके लिए एक-सा न्याय बख्शा है। ऐसा नहीं कि किसी को देखने के लिए आँख आगे तो किसी को पीछे, किसी को एक तो किसी को दो। किसी को कम और किसी को ज्यादा नहीं। अल्लाह ताला की सुरचना में सबका बँटवारा बराबर है। उसी तरह संतों का ज्ञान सबके लिए समान है। उस प्रभु को पाने के लिए जो रास्ता है, वह रास्ता सबके लिए एक है।

क्या हिन्दू क्या मुसलमान, क्या ईसाई जैन।
गुरु भक्ति पूरन बिना, कोई न पावै चैन॥

कुरानशरीफ के पारा ११, सुरत हूद में ठीक वही बात लिखी है, जो बात श्रीमद्भगवद्गीता के अध्याय ६/१३ में लिखी हुई है। दोनो में बिल्कुल साम्य है।

'अकिम वज्हक लिद्दीनि हनीफा।' (कुरानशरीफ)

अर्थात् अपना चेहरा जमा दे, तेरा रुख एक ही ओर स्थिर हो, बिल्कुल नाक की सीध। उसी मार्ग पर दृष्टि जमाकर चल, जो तुझे दिखाया गया है। श्रीमद्भगवद्गीता में–

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः।
सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्॥१३॥

अर्थात् काया, शिर और ग्रीवा को सीधा करके और अचल-स्थिर होकर बैठे तथा किसी दिशाओं को न देखते हुए अपनी नाक के आगे दृष्टि को जमावे।

बाइबिल में हम पाते हैं–'शरीर का दीपक आँख है, यदि तेरी आँख एक हो, तो तेरा सारा शरीर उजियाला होगा; परन्तु यदि तेरी

आँख बुरी हो, तो तेरा सारा शरीर अंधियारा होगा। जो ज्योति तुममें है, सो यदि अंधकारमय है, तो वह अंधकार कितना बड़ा है।

(सेंट जॉन-योहन्ना)

अपने अंदर देखें, हम कहाँ हैं? जब हम आँखें बंद कर देखते हैं, तो हमें अंधकार ही अंधकार दिखता है। इस अंधकार से प्रकाश में कैसे जाओगे, क्या यत्न है? इसी मार्ग-दर्शन के लिए हजरत मुहम्मद साहब आये थे। एक फकीर ने बड़ा अच्छा कहा है–

क्यों भटकता फिर रहा तू ऐ तलाशे यार में।
रास्ता शहरग में है दिलवर पै जाने के लिये॥

अगर हम खुदा के पास जाना चाहते हैं, खुदा का दीदार चाहते हैं, तो हमें अपने अंदर चलना होगा। बाहर संसार में वे कहीं नहीं मिलेंगे। आज हमारे सामने मुहम्मद साहब नहीं है, तो हम पूछें किससे? हजरत मुहम्मद कौन थे? हजरत मुहम्मद साहब खुदा के नूर थे, नवी थे, पीर थे, पैगम्बर थे। उस खुदा के नूर को हम कहाँ ढूँढें? यदि हम उस खुदा के नूर को देखना चाहें, तो कहाँ देख सकते हैं? संत कबीर साहब ने बहुत अच्छा उत्तर दिया है–

मुरसिद नैनों बीच नबी है।
स्याह सफेद तिलों बिच तारा, अविगत अलख रबी है ॥टेक॥
आँखी मद्धे पाँखी चमके, पाँखी मद्धे द्वारा।
तेहि द्वारे दुर्बीन लगावे, उतरै भौजल पारा॥
सुन्न सहर में बास हमारा, तहँ सरबंगी जावै।
साहेब कबीर सदा के संगी, सब्द महल ले आवै॥

अमीर खुसरो ने लिखा है–"अपने गुरु ख्वाजा साहब के पास तोहफए बेनजीर लेकर पंचगंगा घाट पर गया था। उन्होंने जो मेहर की, मेरे दिल की सफाई हो गयी और खुदा का नूर झलक गया।" खुदा का नूर कैसे झलकता है? जब कामिल मुर्शिद की मेहर होती है।

हजरत मुहम्मद साहब की जीवनी में लिखा हुआ है कि वे मक्का से मदीना गये थे। ख्वाजा साहब फरमाते हैं–हजरत मुहम्मद साहब का मक्का से मदीना जाना यानी नौवें द्वार से दसवें द्वार में जाना है। हमलोग नौ द्वार में बँधे हुए हैं। आँख के दो, कान के दो, नाक के

दो, मुँह का एक और मल-मूत्र विसर्जन के दो द्वार; इन नवों द्वारों में हम रह रहे हैं। जबतक हम इन नौ द्वारों में रहेंगे, तबतक अंधकार में रहेंगे। जब इन नवों को छोड़कर दशवें द्वार में जायेंगे, तब हम अंधकार से प्रकाश में जाएँगे।

हम दसवें द्वार में कैसे जायेंगे? इसकी क्या विधि है, इसकी क्या युक्ति है? जबतक कोई इसके बतानेवाले हमें नहीं बतायेंगे, नहीं पा सकते हैं। इसलिए कहा गया है–

मुर्शिदे कामिल से मिल सिद्क और सबुरी से तकी।
जो तुझे देगा फहम शहरग के पाने के लिए ॥

मुर्शिद ने जो फतवा दिया, तकते रहो, देखते रहो। कहाँ देखो? यह समझना होगा। उदाहरण देकर बताया गया–एक बूढ़े सेठजी थे। उन्होंने अपने पुत्र को कमाने के लिए विदेश भेज दिया। सेठ-पुत्र चला गया। बूढ़े बीमार हुए, खबर दी; किन्तु समय पर पुत्र नहीं पहुँच सका। सेठजी का शरीर छूट गया। लड़के ने आकर तिजोरी देखी, वहाँ धन नहीं था। वह चिन्तित हो गया। रोकड़ बही देखी, वहाँ लिखा पाया– अमुक महीना, अमुक तिथि को बारह बजे दिन में मैंने अपनी सम्पत्ति दरवाजे पर स्थित शिवालय के त्रिशूल पर रख दी। वह देखता है, पर उसे कुछ नहीं मिलता है। वह सोचता है, मेरे पिताजी झूठी बात तो नहीं लिखेंगे। इसमें कोई राज है, जो हम नहीं समझ रहे हैं। वह मुनीमजी के यहाँ चला गया। उनसे पूछा–आपको पता है, पिताजी ने सम्पत्ति क्या की? उन्होंने कहा–हाँ, मुझे मालूम है; लेकिन वह महीना आने दो, वह तिथि आने दो, तब खबर करना। वह महीना, वह तिथि आयी। सेठ-पुत्र मुनीमजी को बुलाकर लाया। मुनीमजी ने कहा–'बैठो, अब बारह बजने में एक-दो मिनट बाकी है। जब समय हो गया, तब उन्होंने बताया–ठीक बारह बजे दिन में शिवालय के त्रिशूल की छाया जहाँ पड़ती थी, मुनीमजी ने कहा–'खोदो यहाँ।' जमीन खोदी गयी, सारी सम्पत्ति मिल गयी।

यह एक रहस्य की बात है। इस कथा से यह शिक्षा मिलती है कि किसी जानकार से जाने बिना मात्र किताबी ज्ञान से पूरा लाभ नहीं मिल सकता है। नौ द्वारों से दसवें द्वार में कैसे जायेंगे? सभी बातें

किताबों में लिखी हुई है, लेकिन केवल अध्ययन से काम नहीं चल सकता। पूरे गुरु की खोज करनी पड़ेगी और जानकर हमारे मन में प्रभु पाने की छटपटाहट होने लगती है। तब प्रभु से प्रार्थना करने पर वे सच्चे गुरु से हमें अवश्य मिलवा देते हैं और तब हम अपनी मंजिल तक आराम से पहुँच सकते हैं। पर सबसे पहले हमारे अंदर जिज्ञासा होनी चाहिए, ज्ञान-पिपासा होनी चाहिए, जानकार की तलाश होनी चाहिए।

अब प्रश्न उठता है कि यदि सभी चीजें अंदर ही है, तो बाहर इतने मंदिर, मस्जिद, तीर्थ वगैरह का क्या कोई महत्त्व नहीं? यदि नहीं तो फिर ये बने क्यों? सबों का महत्त्व है और बड़ा भारी महत्त्व है। हमारे देश में सभी चीजें विद्वान सम्मत है। हमारे पूर्वज बहुत ही विद्वान थे। उन्होंने देश के चारो कोने में बड़े-बड़े चार महान तीर्थ बनाये। हमारे देश धर्मप्रधान देश है। यहाँ के लोग कम-से-कम धर्म के बहाने ही अपने पूरे देश में घूम पायेंगे और अपने पूरे देश यानी पूरे परिवार की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे। जबतक हम अपनी चारदिवारी के अंदर बैठे रहते हैं, हमें बाहर की कुछ भी जानकारी नहीं होती, किन्तु हम चारों तरफ तीर्थ भ्रमण के बहाने पूरे देश के हर तबके के लोगों से मिल पाते हैं, उनके रहन-सहन उनके कष्टों की जानकारी ले पाते हैं। यह हमारी कितनी बड़ी उपलब्धि है। हम जहाँ भी जाते हैं, मन में श्रद्धा रहती है, एक-दूसरे से मिलकर श्रद्धा बढ़ती है। श्रद्धा से आत्मा शुद्ध होती है। कहीं उपवास करते हैं, उपवास से आत्मा शुद्ध होती है; कहीं दान करते हैं, दान से आत्मा शुद्ध होती है। इस तरह करते-करते ज्यादा नहीं, तो कुछ-न-कुछ हमारा अंतःकरण अवश्य शुद्ध होता है। ये सभी चीजें करने से धीरे-धीरे हमारी जीवन उन्नति कुछ तो अवश्य होती है, किन्तु ज्यादा कुछ प्राप्ति नहीं होती। पहले ही कहा जा चुका है कि ये बातें प्राथमिक शाला के लिए सही है। मनोरंजन के लिए ठीक है। क्योंकि हम घर में रहते-रहते जब ऊबने लगते हैं, तो मंदिर, तीर्थ-भ्रमण करने जाते हैं, इससे मन भी परिवर्तन होकर स्वस्थ होता है। थोड़ा त्याग भी होता है; किन्तु हम चाहेंगे, इससे परमात्मा मिले, तो कदापि संभव

नहीं है। क्योंकि वे जब भी मिलेंगे, अपने अंदर में।

हम देखते हैं कि हर मंदिर में दीपक जलता है और घंटा बजता है। पंडित लोग कार्य करते हैं, किन्तु कारण नहीं जानते। हमारे पूर्वज बहुत ही विज्ञानी और बुद्धिमान थे। दीपक हमारे अंदर की ज्योति का प्रतीक है और घंटा नाद का। उसे ही हमारे पूर्वजों ने प्रतीक रख छोड़ा है, किन्तु पंडित लोग नहीं समझ पाते, सिर्फ संत ही समझते हैं। गिरजाघर में भी मोमबत्ती जलती है, घंटा लगा रहता है। इसी तरह से सभी जगह विद्वानों ने अंदर के चिह्न को दर्शाने के लिए ज्योति और शब्द का प्रतीक दीया और घंटे को बनाया है।

हमारा जीवन दो ही चीजों से चल रहा है–प्रकाश और शब्द। जब शरीर से ज्योति और शब्द निकल जाते हैं, तो शरीर मृतक हो जाता है। डॉक्टर देखते हैं–आवाज नहीं हो रही है, गर्मी खत्म हो गयी है, तो वह शरीर को मृत घोषित कर देता है। शरीर से गर्मी खत्म, तो शरीर भी खत्म। उसी जीवन को यानी अंदर के प्रकाश और शब्द को विद्वानों ने हर जगह प्रतीक के रूप में बाहर दर्शाया है। जो अध्यात्म-जगत् के ज्ञाता हैं, वे तो समझ लेते हैं, किन्तु जो केवल बाहरी ज्ञानवाले हैं, जीवनभर मंदिर में दीप जलाते और घंटी बजाते हैं, किन्तु अपने अहंकार में या अज्ञानता वश कुछ समझ ही नहीं पाते।

हम यदि आंतरिक साधना को करेंगे, तो हमें सभी चीजों की प्रत्यक्षानुभूति हो जाएगी। इसीलिए कहा गया है–बाहर की चीजों का भी बहुत महत्त्व है, किन्तु ठीक से समझने पर। यदि वे बाहर में ना रहे, तो हमें प्रतीक को भी कैसे जान पायेंगे। अतः उनका तो बहुत ही महत्त्व है, किन्तु पूर्ण जानकारी के बिना अधूरा ज्ञान होने से हम चौरासी में पड़े रहते हैं, अपना पूर्ण कल्याण नहीं कर पाते।

बाहरी पूजा से मन के विकार नहीं जाते, कभी जीवन में दुःख दूर नहीं होता। हर प्राणी जीवनभर पूजा करता है, जन्म से मृत्यु-पर्यन्त, फिर भी सोचने की बात है कि वह झूठ नहीं छोड़ता, चोरी नहीं छोड़ता, नशा नहीं छोड़ता–यह कैसी पूजा है? हमारा अंतःकरण इतना कलुषित हो गया है, जन्म-जन्मान्तरों से चौरासी के चक्कर में पड़े-पड़े

हमारे संस्कार कुसंस्कार बन गये हैं। हम खूब पूजा करते हैं, नित्य पाठ करते हैं, दान भी खूब करते हैं, ब्राह्मणों को भी खूब भोजन करवाते हैं; किन्तु दुःख जीवनभर हमारा पीछा नहीं छोड़ता, आखिर क्यों? क्या हम कारण जानना चाहते हैं? नहीं जानना चाहते। हम मनुष्यमात्र की यह कमजोरी है कि अपनी कमजोरी को छिपाता रहता है, उससे मुकाबला नहीं करता, उसे दूर करने का प्रयास नहीं करता। यदि थोड़ी-सी हिम्मत बटोरकर वह सत्य को जानने की कोशिश करेगा, तो अवश्य सफलीभूत होगा; क्योंकि मानव बुद्धिजीवी प्राणी है। परमात्मा ने उसे क्षमता दी है हर चीज जानने की, समझने की और करने की; किन्तु वह जान-बुझकर अपने आपको धोखा देता रहता है और वर्तमान के साथ-साथ वह अपने सुनहले भविष्य को चौपट कर देता है।

उसी में कोई बुद्धिजीवी प्राणी भाग्यवश गुरु की शरण में चला गया या सत्संग में जाकर सच्चा ज्ञान प्राप्त कर लिया, तो उसका कल्याण हो जाता है, उसका जीवन सफल हो जाता है, उसका वर्तमान एवं भविष्य दोनों बन जाता है। जानते तो पहले भी थे, किन्तु अब सारी बातें स्पष्ट हो चुकी हैं, निर्णय हमारे हाथ में है। या तो हम जानवर की तरह जीकर अपना वर्तमान और भविष्य नष्ट कर लें या फिर थोड़ी सावधानी बरतकर, संयम साधकर अपने जीवन को सुनहला बना लें और चौरासी के चक्कर से छूटने का प्रयास करें।

7. मानव तन देवदुर्लभ है

भगवान श्रीराम ने कहा है–

बड़े भाग मानुष तन पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रन्थहिं गावा।।
साधन धाम मोच्छ कर द्वारा। पाइ न जेहि परलोक सँवारा।।
सो परत्र दुख पावइ, सिर धुनि धुनि पछताई।
कालहि कर्महि ईश्वरहि, मिथ्या दोष लगाई।।

आखिर हम जिन्दगीभर रामायाण पढ़ते हैं, फिर भी भगवान राम की बातें नहीं समझ पाते। हम जिन्दगीभर गीता पढ़ते हैं, फिर भी भगवान श्रीकृष्ण की बातें नहीं समझ पाते। हम जीवनभर तीर्थों में भटकते हैं, फिर भी कुछ हासिल नहीं कर पाते–ऐसा क्यों?

हम जीवनभर शिवजी पर जल चढ़ाते हैं, उनका पाठ करते हैं, फिर भी शिव के प्यारे नहीं बन पाते। हम जीवनभर दुर्गा माँ को खुश करने की चेष्टा करते हैं, फिर भी रामकृष्ण नहीं बन पाते। जीवनभर हनुमानजी का पाठ करते हैं, किन्तु उनके आदेश हैं क्या?

हम बाह्य आडम्बर में ही मदमस्त रह जाते हैं। हम केवल फूल-प्रसाद चढ़ाते एवं जल चढ़ाने को ही असली पूजा समझते हैं। हम केवल पाठ पढ़ने को ही पूजा समझते हैं। असलियत में पाठ में जो लिखा है, वह हमें करना है, मात्र पढ़ना नहीं है। पुस्तक एक डॉक्टर के पुर्जे की तरह है, जिसमें दवाइयाँ लिखी हुई हैं, मात्र दवा का नाम पढ़ने से बीमारी दूर नहीं होगी, हमें दवाई खानी पड़ेगी, उसी तरह उस पाठ को जीवन में उतारना पड़ेगा, केवल रटना नहीं है। उत्तर मिलता है, अज्ञानता के कारण हम किसी भी पूजा की गहराई नहीं जान पाते। भगवान श्रीकृष्ण ने स्पष्ट कहा है–जो कोई देवी-देवता की पूजा करते हैं, उस पूजा को भी मैं स्वीकार करता हूँ और उनके भाव के अनुरूप फल देता हूँ; किन्तु उनका भाव मुझ परमेश्वर में नहीं होने के कारण वे मोक्ष के रास्ते से वंचित रह जाते हैं।

अब हम किनके कहने का इंतजार कर रहे हैं। हमारा मन इतना संकीर्ण है कि हम सबको एक नहीं मान पा रहे हैं। क्योंकि हमारा अंत:करण अपवित्रता का भंडार हो चुका है। इसे पवित्र करने के लिए हमारे पास न ज्ञान है, न समय और न चाहना। बस लोगों की भीड़ में

हम भी दौड़े जा रहे हैं। एक दिनचर्या हमने निश्चित कर ली है–सुबह उठना, मंदिर में जाकर थोड़ा घंटी बजा लिये, थोड़ा-सा पाठ कर लिये और दिनभर भोजन बनाना और खाना एवं केवल सांसारिक झंझटों को अपना काम समझ उसमें उलझे रहना। हम सभी बातों को पढ़कर खूब अच्छी तरह समझ लें और अब बचे हुए समय का सदुपयोग कैसे करेंगे–यह निर्णय कर लें। गुरुदेव की वाणी है–'बीति सो बीति अब राख रही को।' 'जब जागो तभी सबेरा।' हमारी जब भी नींद खुली, तभी हमें सबेरा हुआ जानना चाहिए और अपने जीवन के बचे हुए समय का सदुपयोग कर अपने को भाग्यवान बना लेना चाहिए। जल्द-से-जल्द किसी योग्य गुरु को ढूँढ़कर उनसे शिक्षा-दीक्षा ले अपना कल्याण के मार्ग का श्रीगणेश कर देना चाहिए।

हमें ऐसी बात कभी नहीं बोलनी चाहिए कि गुरु की आवश्यकता नहीं है। यदि आवश्यकता नहीं होती, तो भगवान श्रीराम और भगवान श्रीकृष्ण को गुरु बनाने की क्या आवश्यकता पड़ती। सार यह है, गुरु बनाये बिना हमारा काम कभी नहीं चल सकता।

ईश्वर सभी जगह हैं, वे तो हमारे हृदय में भी हैं, फिर भी हम अज्ञानता में भटक रहे हैं, क्यों? वे हमें कभी नहीं बताते हैं कि मैं यहाँ बैठा हूँ, आकर दर्शन कर लें। उनको पाने के लिए, उनका दर्शन करने के लिए गुरु की आवश्यकता होती है। जैसे पाँच मंजिल का भवन तैयार है, पर सीढ़ी नहीं हो, तो हम कभी नहीं चढ़ पायेंगे। वैसे ही गुरु के बिना ईश्वर को कभी नहीं प्राप्त कर पायेंगे। गुरुदेव ईश्वर तक पहुँचने की विधि बतलाते हैं। परम पूज्य गुरुदेव बतलाते हैं–'हम अजर, अमर, अविनाशी, सब सुखराशि हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं–

ईस्वर अंस जीव अविनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी।।
सो मायाबस भयेउ गुसाईं। बंधेउ कीर मरकट की नाईं।।

संत कबीर साहब की वाणी में है–

भैया! कोइ न पतियाय।
बघवा के बचवा बिलैया लिये जाय।।

बाघ के बच्चे को बिल्ली लेकर भाग रही है, इस बात पर

कौन विश्वास करेगा? जीवात्मा ईश्वर का अभिन्न अंश है। आत्मा अजर, अमर, अविनाशी है। यह माया के फेर में पड़ा हुआ है। हम चेतन हैं और मन जड़ है। जड़-चेतन की लड़ाई चल रही है। यह मन बंदर के समान है। मदारी बंदर को नचाता है, बंदर ठीक-ठीक तमाशा दिखाता है, तो कुछ पैसे मिल जाते हैं, किन्तु बंदर यदि किसी की साड़ी पकड़कर खींचे, किसी को दाँत काटे, तो क्या होगा? बंदर और मदारी दोनों की पिटाई होगी।

संतमत में मोक्ष प्राप्त करने का बड़ा ही आग्रह है। संतों ने जो भी उपदेश दिया है, सबका सार यही है कि सब कोई मोक्ष के लिए उपाय करो। मोक्ष यानी मुक्ति। किस चीज से मुक्ति?–बंधन से। हम बंधन में पड़े हुए हैं। बंधन हमारे अंदर है। जहाँ बंधन रहता है, वहीं बंधन खुलता भी है। मोक्ष कहीं हिमालय की चोटी पर या पहाड़ की गुफा में रखा हुआ नहीं है। अपने अंदर में ही खुलेगा।

शरीर जड़ है, सब इन्द्रियाँ जड़ हैं, अंतःकरण की इन्द्रियाँ–मन बुद्धि, चित्त, अहंकार सब जड़ हैं। स्थूल के अंदर सूक्ष्म, कारण, महाकारण सब के सब जड़ हैं। जैसे एक धातु से अनेक जेवर बना लो, अनेक जेवर बनने से भी सबमें एक ही धातु है, उसी प्रकार सभी इन्द्रियों के काम अलग-अलग है, पर चारो जड़ शरीर है। इन्द्रियों के संग का काम अपूर्ण है। यदि हम इन्द्रियों से अलग होकर काम करेंगे। वह काम है ईश्वर की प्राप्ति। यही काम पूर्ण है। चेतन के अंदर इतनी शक्ति है, जितनी इन्द्रियों को कभी नहीं हो सकती। इन्द्रियों के कामों में कभी तृप्ति नहीं होती, उसमें सुख के साथ दुःख लगा हुआ है। इसलिए संतों ने कहा–तुम अपने को जड़ से फुटाकर अकेले होकर रहो, तभी सुख-चैन और नित्यानंद मिलेगा। जिस प्रकार घर में यह शरीर है, उसी प्रकार शरीर भी घर ही है, जिसमें तुम स्वयं रहते हो। घर में रहकर तुम घर के कामों को ठीक-ठीक चलाते हो, उसी प्रकार शरीर रूप घर में रहकर भी ठीक-ठीक काम करो। वह काम ईश्वर का भजन-ध्यान है।

संतों ने झूठ, चोरी, नशा, हिंसा, व्यभिचार को छोड़ने कहा है। संतों के इन उपदेशों के अनुकूल चलने से देश सुखी हो जाएगा; लेकिन संतों की बातों को कौन सुनता है।

8. एकनिष्ठ भक्त का कभी अनिष्ट नहीं होता

हम इसे उदाहरण द्वारा समझा सकते हैं, जैसे हमारे घरों में जो सेवक काम करते हैं, जो केवल हमारे घर में ही करते हैं, हम उनकी पूरी व्यवस्था करते हैं, उनके खाने-पीने से लेकर इलाज एवं यहाँ तक उनके परिवारवाले की भी चिंता करते हैं, किन्तु जो सेवक या सेविकाएँ थोड़ी देर के लिए आती हैं या अन्य घरों में भी करती है, हम उनकी जरूरत पूरी करने में कतराते हैं या थोड़ी-सी मदद करके कहते हैं और दूसरी जगह से ले लेना।

बस वही बात है, हम यदि एक इष्ट पर आधारित है, तो उन्हें हमारा योगक्षम वहन करना ही पड़ता है, किन्तु यदि कई देवी-देवता के उपासक है, तो वैसी ही गति हमारी हो जाती है, जैसे कई घरों की सेविकाओं की। उन्हें मेहनत भी ज्यादा करनी पड़ती है और वेतन भी कम मिलता है, साथ ही किसी एक का सहारा नहीं मिल पाता, तो हमारा विश्वास डाँवाडोल रहता है। एकनिष्ठ सेवक की तरह हम सेवा करेंगे, तो परमात्मा हमारी पुकार क्यों नहीं सुनेंगे।

एक कहानी के माध्यम से गुरुदेव समझाया करते थे कि कई लड़के खेलने गये हुए थे। एक को प्यास लगी तो वह नदी में पानी पीने चला गया, उसका पैर मगर ने पकड़ लिया। अब वह रामू-रामू चिल्लाने लगा। किसी ने सुना, तो लड़कों से कहा कि कोई रामू-रामू चिल्ला रहा है। रामू दौड़ा-दौड़ा जा रहा था। इतने में उसने सोचा, रामू नहीं आ रहा है, तो उसने मोहन को पुकारना शुरू किया। जब रामू पास आया, तो उसने सोचा, यह मुझे तो नहीं मोहन को बुला रहा है। वह लौट गया और उसने कहा–वह मोहन को बुला रहा है। मोहन जब गया, तबतक वह थककर और किसी और को बुलाने लगा। इस तरह बदलते-बदलते उसकी जान ही चली गयी।

हम समझ सकते हैं, यदि वह केवल एक का ही नाम पुकारता कि मरूँ या जीऊँ, तब सब काम हो जाता है। इसमें हमें आत्मविश्वास की जरूरत है तथा साथ ही समर्पण की।

एक बार गुरुदेव ने अपने साथ घटी कहानी बतायी। गुरुदेव दिल्ली में कान के डॉक्टर को दिखलाने गये थे। डॉक्टर ने इन्हें गेरुवे

वस्त्र में देखकर कुछ जिज्ञासा की। उसने कहा–बाबा! आप किस देवता को मानते हैं? और अपने बारे में बताया कि मैं इन-इन देवी-देवताओं की पूजा करता हूँ। ठीक करता हूँ न? गुरुदेव ने कहने की कृपा की, 'पूजा करते हैं, सो तो ठीक करते हैं; किन्तु एक की करनी चाहिए।' उसने कहा–'किसी एक की पूजा करेंगे, तो दूसरे नाराज हो जाएँगे तब?' गुरुदेव ने कहा–देखो, हमारे देश में तैंतीस करोड़ देवी-देवता हैं। मान लिया जाए, यदि आप समय निकालकर सालभर में एक करोड़ की पूजा भी कर लेंगे। आजकल तो वोट का जमाना है, बाकी की नहीं करने से वे नाराज हो जाएँगे। लेकिन डॉक्टर साहब को पूरी समझ में नहीं आयी। फिर गुरुदेव ने कहा, 'आप जब एम०बी०बी०एस० किये थे, तब कितनी बीमारियों को देखते थे?' उन्होंने बताया, 'मैं सभी बीमारियों का इलाज करता था और अब?' उन्होंने कहा, 'अब तो सिर्फ एक कान का इलाज करता हूँ।' तब गुरुदेव ने कहने की कृपा की, 'आप पहले बड़े डॉक्टर थे कि अब हैं।' डॉक्टर ने कहा, 'पहले तो मैं मामूली डॉक्टर था, अभी तो बड़ा डॉक्टर बन गया हूँ।' तब गुरुदेव ने समझाया–'बस वही बात है, जब बहुतों को पूजेंगे तो मामूली एम०बी०बी०एस० बने रहेंगे और एक को पूजेंगे, तो बड़े डॉक्टर बन जायेंगे। अब उनकी समझ में सारी बात आ गयी।

गुरुदेव कहते हैं–अपने घरों की छत पर पानी की टंकी होती है। उसे भरते हैं, फिर वह खाली हो जाती है। उसे फिर भरना पड़ता है, किन्तु जब हम उनका कनक्शन बोरिंग से कर देते हैं, तो खाली होने की नौबत ही नहीं आती। उसी तरह देवी-देवता पानी-टंकी की तरह है और ईश्वर सर्वशक्तिमान बोरिंग की तरह। यदि हम अपना कनक्शन उससे कर लेंगे, तो हमें कभी किसी चीज की कमी नहीं होगी।

उदाहरण के लिए ईश्वर प्रधानमंत्री है और बाकी देवता अलग-अलग विभाग के छोटे-छोटे मंत्री। यदि हमारा संपर्क प्रधानमंत्री से हो जाता है, सभी मंत्री हमारी बात अपने आप मानेंगे। हमें किसी से अलग से संपर्क नहीं करना पड़ेगा। उसी तरह एक ईश्वर की पूजा में सभी देवी-देवताओं की पूजा आ जाती है, किसी की भी नहीं छूटती

है। अतः हमें एकनिष्ठ होने का प्रयत्न करना चाहिए, इससे हमें पूरा लाभ मिल सकता है।

जैसे पेड़ की जड़ में यदि हम पानी डाल देते हैं, तो वह पानी पत्तों, टहनियों, शाखाओं–सभी जगह चला जाता है; किन्तु यदि हम बुद्धिमान बनकर अलग-अलग पत्तों में पानी डालना शुरू कर देंगे, तो पेड़ अवश्य सूख जाएगा। इसी तरह हम केवल कुछ देवी-देवताओं की पूजा करके प्रसन्न हो जाते हैं; किन्तु एक ईश्वर को प्रसन्न नहीं करने के कारण हम कुछ भी लाभ नहीं ले पाते। निर्णय तो हमें खुद करना है कि हमें क्या करना है? हमें क्या चाहिए–चिरशान्ति या चिर जीवनभर का त्रास? जीवनभर सुख-दुःख में पड़े रहकर हम असंतुष्ट जीवन बिताते रहें या फिर एक ईश्वर की उपासना करके शाश्वत सुख एवं संतोष से आत्मा की प्रसन्नता हासिल करें।

9. गुरु बिन सब अंधकार

संसार में दो तरह की विद्याएँ होती हैं—एक जागतिक विद्या और दूसरी आध्यात्मिक विद्या। जागतिक विद्या के द्वारा हम जगत् को जानते हैं और आध्यात्मिक विद्या के द्वारा जगदीश—परमात्मा को जानते हैं। अंग्रेजी में इसे स्प्रिचुअल साइंस (Spiritual Science) कहते हैं। आध्यात्मिक शब्द अध्यात्म से बना है। 'आत्म' शब्द में 'अधि' उपसर्ग जोड़ने अध्यात्म शब्द होता है। 'अधि' का अर्थ है, संबंधी और 'आत्म' का अर्थ है–आत्मा, परमात्मा। आत्मा-परमात्मा-संबंधी विद्या को आध्यात्मिक विद्या कहते हैं। संतों और भगवन्तों ने यह उपदेश दिया है कि जागतिक ज्ञान से सांसारिक लाभ अवश्य होता है; किन्तु इससे परम कल्याण नहीं होता है। जब हम आत्मा-परमात्मा को जानेंगे, तब हमारा परम कल्याण होगा। जानना भी दो तरह से होता है—सुनकर जानना और पहचानकर जानना। सुनकर जानने से थोड़ा लाभ है, पहचानकर जानने से पूरा लाभ है।

सावन के महीने में लोग तीर्थों में जाकर भगवान शिव की पूजा करते हैं। उन्हें प्रसन्न करने के लिए जल-फूल चढ़ाते हैं, 'बोल बम' के नारे लगाते हैं; लेकिन भगवान शिव का क्या उपदेश है, उसे देखिये–

इदं तीर्थं इदं तीर्थं भ्रमन्ति तामसा जनाः।
आत्मतीर्थ न जानन्ति कुतः मोक्षः श्रृणुप्रिया।।

अर्थात् तामसी प्रवृत्ति के लोग यहाँ-वहाँ जाते हैं और कहते हैं, यह तीर्थ है, वह तीर्थ है; किन्तु आत्मतीर्थ को जाने बिना मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती है। संत मलूकदासजी इसी बात को अपने शब्दों में कहते हैं–

आतम राम न चीन्हई, पूजत फिरै पाषाण।
कैसेहु मुक्ति न होयगी, केतिक सुनो पुराण।।

कितना भी शास्त्र-पुराण पढ़ते-सुनते रहें, जबतक आत्मा राम को नहीं जानेंगे, मुक्ति नहीं होगी, आवागमन से छुटकारा नहीं होगा।

संत यारी साहब कहते हैं कि आत्मा को जाननेवाला ज्ञानी है

और अन्य दुनियावी बातों को जानना नादानी है।

आँखों सेती जो भी देखिये, सो तो आलम फानी है।
इन कानों से जो भी सुनिये, सो तो जैसे कहानी है।।
इस बोलते को उलटि देखै, सोइ आरिफ सोइ ज्ञानी है।
यारी कहै यह बूझि देखा, और सबै नादानी है।।

यारी साहब ने यह भी बता दिया कि 'बोलता पुरुष' आत्मा को कैसे देखें? संसार को देखने के लिए बाहर देखते हैं, आत्मा को देखने के लिए उलटिये, बाहर न देखते हुए अंदर देखिये। तब आत्मज्ञान होगा और ज्ञानी बनेंगे। कबीर साहब ने भी स्पष्ट कर दिया है कि आत्मज्ञान के बिना तीर्थों में भटकना बेकार है।

आतम ज्ञान बिना सब सूना, क्या मथुरा क्या कासी।
घर में वस्तु धरी नहीं सूझे, बाहर ढूँढ़न जासी।।

इस शरीररूपी घर में वस्तु—आत्मा और परमात्मा है; लेकिन हमें सूझता नहीं है। हम बाहर में ढूँढ़ने जाते हैं।

प्रश्न उठता है कि शरीर के अंदर आत्मा है, तो डॉक्टर लोग इतना चीर-फाड़ करते हैं, पोस्टमार्टम करते हैं, कभी उनलोगों ने आत्मा को देखा नहीं। आत्मा का भेद उन्होंने बताया नहीं कि कहाँ है, कैसा है? फिर कैसे जानेंगे, उसका भेद कौन बताएगा? इसका उत्तर संत सुंदरदासजी देते हैं–

गुरु बिन ज्ञान नहिं, गुरु बिन ध्यान नहिं।
गुरु बिन आतम विचार न लहतु है।।
गुरु बिन प्रेम नहिं, गुरु बिन नेम नहिं।
गुरु बिन सीलहु, संतोष न गहतु है।।
गुरु बिन प्यास नहिं, बुद्धि को प्रकास नहिं।
भ्रमहु को नास नहिं, संसई रहतु है।।
गुरु बिन बाट नहिं, कौड़ी बिन हाट नहिं।
'सुन्दर' प्रगट लोक, बेद यों कहतु है।।

गुरु के बिना ज्ञान-ध्यान की प्राप्ति और आत्म-विचार कदापि

संभव नहीं होता है। इसलिए अगर कोई आत्मा और परमात्मा के संबंध में जानना चाहता है, तो उसे विनम्रतापूर्वक गुरु की कृपा प्राप्त करनी चाहिये। सांसारिक ज्ञान सीखने के लिए भी गुरु की आवश्यकता होती है, फिर यह तो परम ज्ञान है। बिना गुरु के इसकी प्राप्ति कैसे होगी? गोस्वामी तुलसीदासजी ने लिखा है–

बिनु गुरु होइ कि ज्ञान, ज्ञान कि होइ विराग बिनु।
गावहिं वेद पुरान, सुख कि लहिय हरि भगति बिनु।।

कितना भी हम पूजा-पाठ, जप-तप कर लें, पर गुरु के बिना समझिये कि सब बेकार चला गया।

गुरु बिनु माला फेरता, गुरु बिन करता दान।
गुरु बिनु सब निष्फल गया, बूझो वेद पुरान।। –संत कबीर साहब

कथा सुने ब्रतहू किये, तीरथ किये अघाय।
गुरुमुख के हूए बिना, जप तप निष्फल जाय।। –संत चरणदास

मनुष्य-शरीर मिल गया, बड़ा भाग्य है। भगवान श्रीराम ने कहा–**'बड़े भाग मानुष तन पावा।'** सत्संग मिल गया, तो भाग्य और बढ़ गया। भगवान् ने कहा–**'बड़े भाग पाइये सत्संगा।'** लेकिन गुरु नहीं मिले, तो आत्मज्ञान नहीं मिलेगा और यहाँ से भी हमलोग चौरासी लाख योनियों के चक्कर में भटक जाएँगे। इसलिए भगवान राम को कहना पड़ा–

जे गुरु पद अंबुज अनुरागी। ते लोकहु बेदहु बड़ भागी।।

जब सच्चे सद्गुरु मिलते हैं और उनसे दीक्षा के रूप में ज्ञान मिलता है, तब वही होता है, भक्ति बीज। उस बीज का नाश नहीं होता है। संत कबीर साहब का वचन है–

भक्ति बीज बिनसै नहीं, जौं जुग जाय अनंत।
ऊँच नीच घर जन्म ले, तऊ संत को संत।।
भक्ति बीज पलटै नहीं, आनि पड़ै जो चोल।

कंचन जौं बिष्टा पड़ै, घटै न वाको मोल।।

एक दिन शरीर अवश्य छूटेगा। यदि भक्ति पूरी नहीं हुई, तो दूसरा शरीर मिलेगा। कौन-सा शरीर मिलेगा? गुरुदेव महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते थे कि भक्ति के बीज को दूसरा शरीर सँभालने के योग्य नहीं है। भजन में अपूर्ण रहने पर दूसरे जन्म में पुनः मनुष्य-शरीर मिलना निश्चित है।

किसी भी कुल में हमारा जन्म हो; लेकिन भक्ति का जो बीज पड़ गया है, उसका नाश नहीं होगा। विचारिये कि दीक्षा का कितना बड़ा महत्त्व है। कितने लोग सोचते हैं कि पूजा-पाठ करते हैं, राम-राम, शिव-शिव कहते हैं, यही भक्ति बीज है; पर ऐसा नहीं है। ये हमें चौरासी के चक्कर से नहीं बचा सकते। जिसे सद्गुरु का ज्ञान मिल गया है और थोड़ा-थोड़ा भी जप-ध्यान करता है, वह मनुष्य-शरीर से नहीं गिरेगा। परमात्मा भी देखते हैं कि जिस काम के लिए मनुष्य-शरीर इसको दिया है, वह काम करने लग गया है। तबतक मनुष्य-शरीर मिलता रहेगा, जबतक कि मुक्ति नहीं मिल जाती। भगवान् श्रीकृष्ण ने भी गीता (२/४०) में इसका उल्लेख किया है–

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य त्रायते महतो भयात् ।।

योग के आरम्भ (बीज) का नाश नहीं होता और उसका उलटा फल भी नहीं होता। भक्त की भक्ति पूरी न हो और शरीर छूट जाय, तो वह किसी श्रीमान् कुल में जन्म लेगा या किसी योगी कुल में जन्म लेगा और पूर्व के संस्कार के वशीभूत होकर फिर से भक्ति शुरू करेगा।

वशिष्ठजी महाराज के पुत्र थे–शक्ति मुनि। शक्ति मुनि के पुत्र हुए, पराशर मुनि। पराशर मुनि के पुत्र हुए, वेदव्यासजी और वेदव्यासजी के पुत्र हुए शुकदेव मुनि। शुकदेव मुनि जन्मजात योगी थे। कहा जाता है कि वे माता के गर्भ में बारह वर्षों तक रह गए। उनमें योगबल ऐसा था कि माता के पेट में उतने दिन रह गए; लेकिन माता को कोई अतिरिक्त कष्ट नहीं था। वेदव्यासजी ने विनती किया–'पुत्र! बाहर आ जाओ, माता को क्यों कष्ट देते हो।' शुकदेव मुनि ने कहा–'मैं बाहर निकलूँगा,

तो माया में फँस जाऊँगा। माया बहुत दुःख देती है।' देवगण प्रकट हुए। उन्होंने आश्वासन दिया—'तुम जन्म लो, तुमको माया प्रभावित नहीं करेगी।' तब शुकदेव मुनि जन्म लिये और जाने लग गए। पिताजी ने कहा—'बेटा कहाँ जा रहे हो?' उन्होंने कहा—'जंगल जा रहा हूँ। वहीं जप-तप करूँगा।'

जंगल में वे पूर्वजन्म के संस्कार से जप-तप करने लग गए। एक दिन मन में हुआ कि भगवान् हरि की उपासना करता हूँ, उनका नाम जपता हूँ, तो क्यों न उनका दर्शन किया जाय। ऐसे योगी थे कि चल दिए भगवान से भेंट करने विष्णुलोक। वहाँ पहुँचकर द्वारपाल से कहा—'जाकर भगवान से कहिये कि वेदव्यासजी के पुत्र शुकदेव मुनि भेंट करना चाहते हैं।' द्वारपाल ने भगवान् से उनका संदेश कह दिया। भगवान् ने कुछ सोचकर द्वारपाल से कहा—'विष्णुलोक में निगुरे का प्रवेश वर्जित है। जाकर कह दो कि वे मुझसे नहीं मिल सकते।' द्वारपाल ने जाकर उन्हें समझाया, पर शुकदेव मुनि क्रोधित हो गए और द्वारपाल से उलझ गए। अंत में द्वारपालों ने धक्के देकर इनको भगा दिया।

दुःखी होकर वे वहाँ से निकले और सीधे पिताजी के पास गए। वेदव्यासजी उन्हें देखकर खुश हो गए कि बेटा लौटकर घर आ गया, पर उन्हें दुःखी और उदास देखकर पूछा—'पुत्र! क्यों परेशान हो?' शुकदेव मुनि सब बातें बताकर कहा कि भगवान् ने मेरी बेइज्जती की है। भेंट नहीं किया और बहाना कर दिया कि मैं निगुरा हूँ।' वेदव्यासजी ने समझाते हुए कहा—'पुत्र! उन्होंने ठीक ही कहा। जबतक गुरु धारण नहीं होता, तबतक व्यक्ति पवित्र नहीं होता है।' बहुत समझाने-बुझाने पर उनका क्रोध शांत हुआ। अब उन्हें गुरु की आवश्यकता समझ में आई और उन्होंने पूछा कि पिताजी आप ही बतलाइये कि मैं किसे अपना गुरु बनाऊँ? वेदव्यासजी सोचने लगे कि दीक्षा तो मैं खुद इसे दे सकता हूँ, पर यह मुझे कभी गुरु नहीं समझेगा, बाप ही समझता रहेगा। यह विचारकर कहा—'मेरी नजर में अभी एक योग्य गुरु हैं, जनकजी महाराज।'

शुकदेव मुनि कहने लगे—'वे तो गृहस्थ हैं, मैं ब्रह्मचारी हूँ।

उनसे दीक्षा नहीं ले सकता।' किसी तरह समझा-बुझाकर वेदव्यासजी ने उन्हें जनकजी के पास भेज दिया। वे घूम-घामकर आ गए और तर्क दिया कि वे तो समृद्धि में रहते हैं, भोगी हैं, हम त्यागी हैं। मैं उनसे दीक्षा नहीं लूँगा। दूसरे दिन फिर पिता ने समझाकर उन्हें भेजा। फिर लौटकर आ गए और कहने लगे कि हम ब्राह्मण हैं और वे क्षत्रिय। वे हमसे निम्न जाति के हैं। इस प्रकार तेरह बार लौटकर आए, तब चौदहवीं बार जाकर जनकजी से दीक्षा लिया। दीक्षा से पहले जनकजी ने परीक्षा भी खूब ली। पर अबतक शुकदेव मुनि नारदजी की प्रेरणा से गुरुज्ञान पाने के लिए दृढ़ हो चुके थे। दीक्षा लेकर जब वे पिता के पास आए, तो पिता ने पूछा–'पुत्र! तुम्हारे गुरु कैसे हैं?' शुकदेव मुनि ने कहा–'मैं वर्णन नहीं कर सकता।' पिता ने पूछा—'क्या तुम्हारे गुरु सूर्य के समान प्रकाशमान हैं?' शुकदेव मुनि ने कहा—'पिताश्री! सूर्य में तो ताप है, पर हमारे गुरु में ताप नहीं है।' पिता—'तब वे चन्द्रमा की तरह होंगे?' शुकदेव मुनि—'पिताश्री! चन्द्रमा में तो दाग है, पर हमारे गुरु में दाग नहीं है।' पिता—'फिर वे कैसे हैं?' शुकदेव मुनि—'वस्तुतः उनके समान लोक में कोई दूसरा है ही नहीं।'

एक दिन पुनः शुकदेव मुनि के मन में विचार आया कि भगवान विष्णु से भेंट करने के लिए चलना चाहिये। इस बार जब विष्णुलोक गए, तो भगवान स्वयं आए और आदर के साथ अंदर ले गए। स्वागत-सत्कार भी खूब हुआ। इस प्रसंग पर संत कबीर साहब की बड़ी अच्छी उक्ति है–

गर्भ योगेश्वर गुरु बिना, लागा हरि के सेव।
कह कबीर बैकुण्ठ से, फेरि दिया शुकदेव।।
जनक विदेही गुरु मिला, लगा पद के सेव।
कह कबीर बैकुण्ठ में, जाय मिला शुकदेव।।

गुरु की महिमा का क्या वर्णन किया जाय, वह वर्णनातीत है। गुरु महाराज कहते हैं–

गुरु गुण अमित अमित को जाना। संक्षेपहिं सब करत बखाना।।

संत कबीर साहब का वचन है–

सब धरती कागद करूँ, लेखनि सब बनराय।

सात समुंद की मसि करूँ,गुरु गुण लिखा न जाय।।

जब गुरु का संग मिला, सत्संग मिला तब शुकदेव मुनि को भी गुरु की महिमा समझ में आई।

एक और छोटा-सा उदाहरण लीजिए। बंगाल में बहुत बड़े संत हुए रामकृष्ण परमहंस, जो स्वामी विवेकानन्द के गुरु थे। रामकृष्ण परमहंसजी बड़े सरल भक्त थे। वे दक्षिणेश्वर काली मंदिर में पुजारी का काम करते थे। प्रतिदिन शंख-घड़ियाल बजाना, भोग लगाना, आरती गाना—ये सब किया करते थे। जगज्जननी भगवती में उनकी बड़ी श्रद्धा थी। कहते हैं कि पत्थर से भी भगवान प्रकट हो जाते हैं। एक दिन उन्होंने ठान लिया कि माँ प्रकट होकर हमको भोजन कराएगी, तभी खाऊँगा। अंत में ऐसा हुआ कि माँ काली को सशरीर प्रगट होना पड़ा। तब से ऐसा होता कि जब भी वे माँ काली को पुकारते, वह प्रकट होकर दर्शन देती थी।

प्रबल प्रेम के पाले पड़कर, प्रभु को नियम बदलते देखा।

अपना मान टले टल जाए, भक्त का मन न टलते देखा।।

श्रीरामकृष्ण परमहंस ऐसे भक्त थे कि काली माँ से उनकी बातचीत होती थी। एक दिन पंजाब के महात्मा तोतापुरीजी वहाँ आए और श्रीरामकृष्ण की सरलता देखकर बड़े प्रभावित हुए। उन्होंने कहा कि मैं तुमको ब्रह्मज्ञान की दीक्षा देना चाहता हूँ, तुम दीक्षा ले लो। रामकृष्ण परमहंस ने कहा—'मैं माँ को पूछूँगा, वह स्वीकृति देगी, तब दीक्षा लूँगा।' तोतापुरीजी ने कहा—'ठीक है, माँ को पूछ लो।' वे मंदिर चले गये और माँ-माँ पुकारने लग गए। माँ काली प्रकट हो गई। श्रीरामकृष्ण ने उनसे सारी बातें बताईं। माँ काली प्रसन्न होकर कहने लगी—'पुत्र! अवश्य जाओ, तुम्हें ब्रह्मज्ञान सिखाने के लिए ही उनका आगमन हुआ है।' फिर उन्होंने तोतापुरीजी से विधिवत् गुरु-दीक्षा प्राप्त की। जबतक वे माँ काली की पूजा करते थे, साधारण पंडित ही थे। दीक्षा मिलने के बाद ही रामकृष्ण परमहंस हुए।

संत कबीर साहब बाल्यकाल से ही ज्ञानी और भक्त थे, पर

उन्हें भी रामानंद स्वामी को गुरु बनाना पड़ा। गोस्वामी तुलसीदासजी ने स्पष्ट कर दिया है कि कोई चाहे भगवान शिव और ब्रह्माजी के समान शक्तिसम्पन्न ही क्यों न हो, वह गुरु के बिना भवसागर पार नहीं हो सकता, आवागमन के चक्र से नहीं छूट सकता, मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकता।

गुरु बिनु भवनिधि तरै न कोई। जौं बिरंचि संकर सम होई।।

अगर कोई आत्मा-परमात्मा को जानकर मुक्त होना चाहता है, तो बिना गुरु की शरण में गए कोई उपाय नहीं है। गुरु के बिना मोह का नाश नहीं होता, बुद्धि पर अज्ञान का परदा पड़ा रहता है।

जे सउ चंदा उगवहि सूरज चढ़हि हजार।

ऐतै चानण होदिया गुर बिन घोर अंधार।।

गुरु नानक साहब कहते हैं कि एक साथ सैकड़ों चन्द्रमा और हजारों सूर्य उदित हो जायँ; लेकिन गुरु के बिना जीवन में अँधेरा बना रहेगा। यही बात गुरुदेव महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज भी कहते हैं—

गुरु बिन सब अंधकार सूर्य चन्द्र तारणं।

चन्द्रमा रात को प्रकाशित होता है, सूर्य दिन में प्रकाश फैलाता है; किन्तु गुरु शिष्य के हृदय में सतत प्रकाश फैलाते रहते हैं। पर, गुरु सच्चा होना चाहिये। यदि सच्चे गुरु मिल गए, तो समझिये कि काम बन गया। संत कबीर साहब का वचन है—

गुरु मिले ताके खुलै कपाट। बहुरि न आवै योनी बाट।।

यदि झूठे गुरु की फेर में पड़ गए, तो कबीर साहब कहते हैं—

जा गुरु ते भ्रम ना मिटे, भ्रांति न जीव का जाय।

सो गुरु झूठा जानिये,त्यागत देर न लाय।।

झूठा गुरु आपके धन का हरण करेगा, पर आपके दुःख का हरण नहीं कर सकेगा। जो अज्ञान की अवस्था से ज्ञान में ले जाए, अंधकार से प्रकाश में जाने का भेद बतावे, निर्गुण ब्रह्म का रहस्य समझा दे, वे सच्चे गुरु हैं।

ज्ञान कहै अज्ञान बिनु, तम बिनु कहै प्रकास।

निरगुन कहै जो सगुन बिनु, सो गुरु तुलसीदास।।

ऐसे सच्चे गुरु मिल जायँ तो,

साँचे गुरु के पच्छ में, मन को देय ठहराय।

चंचल तें निःचल भया, नहिं आवै नहिं जाय।। –संत कबीर साहब

सच्चे गुरु यदि मिल गये, तो उनके चरणों में अपने को समर्पित कर दीजिये, मन को कहीं अन्यत्र नहीं भटकाइये। गुरु महाराज की वाणी हमलोग प्रतिदिन गाते हैं–

पाखण्ड अरुऽहंकार तजि, निष्कपट हो अरु दीन हो।

सब कुछ समर्पण कर गुरु की, सेव करनी चाहिये।।

इसी प्रसंग में एक बार पूज्यपाद महर्षि संतसेवी परमहंसजी महाराज ने प्रवचन के क्रम में कहने की कृपा की थी–"आपलोग रोज गाते हैं, **'सब कुछ समर्पण कर गुरु की सेव करनी चाहिये।'** पर समर्पण तो कुछ करते नहीं हैं। सिर्फ गाने से, जुवानी जमा-खर्च से क्या होगा। अभी तक आपलोगों ने क्या-क्या समर्पण किया है? केवल गाते ही रहे।" सभी स्तब्ध होकर एक दूसरे का मुँह देखने लग गए।

फिर हुजूर कहने लगे, आपलोग यह मत सोचिए कि गुरु महाराज को आपकी धन-सम्पत्ति, जमीन-जायदाद का लोभ है। आपलोग मेहनत करके उपार्जन करते हैं। इसलिए ऐसा कीजिए कि जो-जो आपके काम की चीजें हैं–जमीन, घर, रुपये-पैसे, सोने-चाँदी; आप सब अपने पास ही रखिये। कम-से-कम जो आपके पास बेकाम की चीजें हैं, जो बुरी-बुरी आदतें हैं, वे ही गुरु महाराज को दीजिये। आप झूठ बोलते हैं, निंदा करते हैं, हिंसा करते हैं, व्यभिचार करते हैं–ये सब बुरी चीजें ही दे दीजिये, तो आपका कल्याण हो जाएगा। लेकिन आप अपनी बुराई भी देना नहीं चाहते हैं, तब कल्याण कैसे होगा? केवल मुँह से कहते रहने से नहीं होगा।

कितना सुंदर विचार है कि हम अपनी बुराई गुरु महाराज को सौंप देंगे, तो पवित्र हो जाएँगे और हममें परमात्म-प्राप्ति की योग्यता हो जाएगी। गुरु नानक साहब का वचन है–

'सूचै भाडै साचु समावै, बिरलै सूचाचारी।'

हमारा हृदय पवित्र होगा, तो उसमें पवित्र परमात्मा प्रकट होंगे। पहले परमात्मा का प्रकाश देखने में आएगा, उनकी आवाज को सुनेंगे और फिर निश्चित रूप से परमात्मा दूर नहीं रहेंगे। कबीर साहब अपनी आपबीती कहते हैं–

कबिरा मन निर्मल भया, जैसे गंगा नीर।

पीछे पीछे हरि फिरैं, कहत कबीर कबीर।।

पहले हरि—परमात्मा को खोजते फिरते थे, वे मिलते नहीं थे, पर अब जब मन गंगाजल की तरह पवित्र हो गया, तो परमात्मा ही कबीर को खोजते हैं, पुकारते हैं। भगवान श्रीराम ने भी समर्पित भाव से गुरुसेवा करने का आदेश दिया और इसे तीसरी भक्ति कही।

गुरु पद पंकज सेवा, तीसरि भगति अमान।

कहते हैं कि मान-प्रतिष्ठा की इच्छा छोड़कर गुरु की सेवा करो। तो क्या, भगवान भी गुरु की सेवा करते थे–

मुनिवर सयन कीन्ह जब जाई। लगे चरण चांपन दोउ भाई।।

उनके गुरु जब सोने जाते थे, तो राम-लक्ष्मण दोनों भाई उनके पैर दबाते थे। देखिये, कैसा आदर्श उन्होंने प्रस्तुत किया है। जैसे विश्वामित्र मुनि और वशिष्ठ मुनि भगवान श्रीराम के दो गुरु हुए, वैसे ही भगवान श्रीकृष्ण के भी दो गुरु हुए—गर्ग मुनि और संदीपन मुनि। भगवान श्रीकृष्ण सुदामाजी के साथ जंगल जाते थे और गुरु-चौका के लिए लकड़ी काटकर लाते थे।

राम कृष्ण ते को बड़ो, तीनहु ने गुरु कीन्ह।

तीन लोक के ठाकुरे, सो गुरु के आधीन।।

भगवान शिव की बात लीजिये, उन्होंने गुरु की महिमा में यहाँ तक कह दिया कि–

जे सठ गुरु सन इरिषा करहीं। रौरव नरक कोटि जुग परहीं।।

जो मूर्ख गुरु से ईर्ष्या करता है, वह रौरव नामक भयंकर नरक में करोड़ों युगों तक सड़ता है। आज कितने लोग कहते हैं कि हम शिव के भक्त हैं, पर गुरु को नहीं मानते। आप जिनके भक्त हैं, वे गुरु को

मानते हैं और आप नहीं मानते हैं। कितनी विचित्र बात है! भगवान शिव ने स्पष्ट कह दिया कि गुरु की पूजा करो।

ध्यान मूलं गुरुमूर्तिः, पूजा मूलं गुरुर्पदम्।
मंत्र मूलं गुरुर्वाक्यम्, मोक्ष मूलं गुरुर्कृपा।। –गुरुगीता

वे कहते हैं कि ध्यान करना हो तो गुरुमूर्ति का ध्यान करो, पूजा करनी हो तो शिवलिंग की नहीं, गुरु के चरण की पूजा करो। अपने मन से 'ओऽम् नमः शिवाय' या 'शिव-शिव' मत जपो। गुरु ने जो मंत्र दिया है, उसको जपो और अगर मोक्ष चाहिये, तो गुरु की कृपा प्राप्त करो। भगवान शिव ने ऐसा स्पष्ट उपदेश दिया है, फिर भी लोग कहते हैं कि गुरु की आवश्यकता नहीं है, शिव ही हमारे गुरु हैं। गुरु ज्ञान देते हैं और हमारा आध्यात्मिक मार्गदर्शन करते हैं। क्या भगवान शिव की मूर्ति या शिवलिंग से यह लाभ मिलेगा? शरीरधारी सच्चे गुरु मिल जायँ और उनमें समर्पण हो, विश्वास हो, उनकी आज्ञा में रहें, तो वे हमारे चरित्र का निर्माण करके हमें निर्वाण तक ले जा सकते हैं।

शिष तो ऐसा चाहिये, जैसा माटी मोय।
आपा सौंपि कुम्हार को, जो कुछ होय सो होय।।
गुरु कुम्हार शिष कुम्भ है, गढ़ि गढ़ि काढ़ै खोट।
अंतर हाथ सहार दे, बाहर बाहै चोट।।
–संत कबीर साहब

कुम्हार मिट्टी को कूटता है, पीसता है, पानी देकर गूँथता है। तब जाकर गढ़ते-गढ़ते सुंदर मूर्ति या बर्तन बना देता है। इस दौरान मिट्टी को बहुत कुछ सहना पड़ता है। वही मिट्टी जो खेत में पड़ी हुई थी, कोई उसे पूछता नहीं था, मूर्ति बनकर घर में आ गई। अब उसकी कीमत और इज्जत दोनों बढ़ गई। अगर वही मिट्टी पीटने, कूटने का दर्द न सह पाए, तो सब दिन मिट्टी ही रह जाएगी, उसकी कीमत नहीं बढ़ेगी। अभी दीपावली है। कुम्भकार लोग लक्ष्मी और गणेश की मूर्ति बनाकर बेचते हैं। लोग उसे खरीदकर घर लाते हैं, नए कपड़े पहनाकर आसन पर बिठाते हैं। फिर माला पहनाकर, फूल-प्रसाद चढ़ाकर उसे प्रणाम करते हैं। उस मिट्टी की कीमत कैसे बढ़ गई? इसके पीछे

कुम्भकार की मिहनत है। एक शायर में बड़ा अच्छा कहा है–

समर में घाव खाता जो, उसी का मान होता है।
छिपा उस वेदना में, अमर बलिदान होता है।।
सृजन में चोट सहता जो, छेनी और हथौड़े का।
वही पाषाण मंदिर में, कहीं भगवान होता है।।

जो पत्थर छेनी और हथौड़े का बहुत चोट सहता है, वही मंदिर में कहीं भगवान होता है। उसी तरह जब गुरु की शरण में जाते हैं, तो गुरु बहुत तरह से परीक्षा लेते हैं, अनुशासन में रखते हैं। कितने शिष्य ऊबकर भाग जाते हैं और कोई-कोई टिक जाते हैं। जो गुरु की डाँट सहकर सँभलते हैं और टिके रहते हैं, वे सद्गुरु महर्षि मेँहीं और महर्षि संतसेवी बनकर इतिहास बना जाते हैं। जो ऊबकर भाग जाते हैं, वे इतिहास नहीं बना जाते हैं।

पूज्यपाद महर्षि संतसेवी परमहंस ने अपने गुरु की अनन्य सेवा की, कभी-कभी उन्हें गुरु महाराज से डाँट भी सुननी पड़ती थी; लेकिन कभी हटे नहीं, डटे रहे। नतीजा सबके सामने है।

एक दिन उन्होंने इसी संदर्भ में अपना विचार सुनाया–'देखिये, आम का महीना आ गया है। अभी मंजर लगा हुआ है। आँधी आएगी और बहुत-से मंजर झड़ जाएँगे। झड़े हुए मंजर से कुछ काम नहीं होगा। कुछ मंजर पेड़ से लगा रह जाएगा, तो उसमें टिकोले होंगे। अगर वह टिकोला आँधी में झड़ जाय, तो कुछ काम होगा। लोग उसे पिसकर चटनी बनाकर खाते हैं। एक-दो दिन काम आता है। कुछ टिकोला ऐसा भी होगा, जो आँधी-बरसात को सहकर पेड़ से लंबे समय तक लगा रहेगा। होते-होते वह बड़ा और डम्भक (परिपक्व) होगा, उसमें कोसा बनेगा। अब अगर वह गिर जाय, तो लोग उसका आचार बनाएँगे। उसकी कीमत बढ़ जाएगी और ज्यादा दिनों तक काम आएगा।

लेकिन कुछ आम जो ऐसे भी होंगे, जो कितनी भी आँधी-पानी आए, पेड़ से चिपका रह जाएगा, गिरेगा नहीं। तब क्या होगा? अंत में वह पककर रसीला, मीठा, स्वादिष्ट और पौष्टिक हो जाएगा। इतना ही नहीं, उस आम में यह शक्ति आ जाएगी कि अब वह जमीन पर गिरकर

दूसरा पेड़ पैदा कर सकता है। उसी तरह जो गुरु के पास गए, थोड़े समय में भाग गए, तो वे मंजर की तरह झड़ गए। उनकी कोई कीमत नहीं है। यदि गुरु की सेवा में कुछ दिन रहकर तब वहाँ से हटे, तो वे कुछ काम के लायक हैं, जैसे टिकोला से चटनी बनती है। अगर ज्यादा दिनों तक गुरु की शरण में रह गए, तो सीखा हुआ ज्ञान कुछ काम अवश्य आएगा। वे पके तो नहीं, पर आचार की तरह उनकी कुछ कीमत हो गई। लेकिन जो गुरु के पास रहकर श्रद्धापूर्ण भाव से उनकी सेवा करते हैं, उन्हें छोड़कर नहीं भागते, अंत तक गुरु के साथ बने रहते हैं, पके आम की तरह उनका ज्ञान भी परिपक्व हो जाता है और अब वे दूसरे को भी गुरु बना सकते हैं।' सहजोबाई ने सही कहा है–

गुरु देवैं तासों अधिक, राम सकै नहीं देय।
मूर्ख बिगाड़ै आपने, गुरु तजि रामहिं सेय।।

जो गुरु को छोड़कर राम के पीछे भागता है, वह अपना काम बिगाड़ता है। गुरु जो दे सकते हैं, वह राम भी नहीं दे सकते। अगर राम ही दे देते, तो शबरी को क्यों कहते—'गुरु पद पंकज सेवा, तीसरी भगति अमान।' भगवान श्रीराम जब रावण को मारकर अयोध्या लौटे, तो माता कौशल्या ने विह्वल होकर उनको अपनी गोद में बिठा लिया और उनकी देह को सहलाती हुई कहने लगी—'बेटा! तुम्हारा शरीर तो कमल फूल के समान कोमल है, तुम ऐसे भयानक राक्षसों को कैसे मार पाए?' भगवान श्रीराम ने उत्तर दिया–

गुरु वसिष्ठ कुल पुज्य हमारे। तिनकी कृपा दनुज रण मारे।।

हे माता! परम पूज्य गुरुदेव वशिष्ठजी महाराज की कृपा से हमने रण में रावणादि राक्षसों को मारकर युद्ध जीता है। वे कह सकते थे कि हम तो मर्यादा पुरुषोत्तम हैं, त्रयलोक के स्वामी हैं, जो चाहें, सब कुछ कर सकते हैं; लेकिन ऐसा नहीं कहा, गुरु की मर्यादा को बढ़ाया।

गुरु में विशेषता होती है कि वे अपने समान बना लेते हैं, लेकिन कब? जब गुरु में आपकी पूरी श्रद्धा हो।

गुरु आज्ञा मानै नहीं, गुरुहिं लगावै दोष।
गुरु निंदक जग में दुखी, मुए न पावै मोष।।

सहजोबाई कहती हैं कि जो गुरु की निंदा करते हैं, गुरु को दोष लगाते हैं, वे दुःख के भागी होते हैं और उनको कभी मोक्ष नहीं मिलता। गुरु माता, पिता, परमात्मा सबसे कई गुणा अधिक उपकार करते हैं।

पितु सूँ माता सौ गुना, सुत को राखै प्यार।
मन सेती सेवन करै, तन सूँ डाँट अरु गार।।
माता सूँ हरि सौ गुना, जिनसे सौ गुरुदेव।
प्यार करैं औगुन हरैं, चरणदास शुकदेव।।

यदि गुरु की कृपा मिल गई, तो और किसी की कृपा मिले, नहीं मिले, कोई बात नहीं। समझिये आपका काम बन गया।

हरि किरपा जो होय तो, नाहीं होय तो नाहिं।
पै गुरु कृपा दया बिनु, सकल बुद्धि बहि जाहिं।। –सहजोबाई

प्रथम देव गुरुदेव जगत में, और न दूजो देवा।
गुरु पूजे सब देवन पूजे, गुरु सेवा सब सेवा।। –लक्ष्मीनाथ गोसाईं

देवी देव समस्त पूरण ब्रह्म परम प्रभु।
गुरु में करें निवास कहत हैं संत सभू।। –महर्षि मेँहीँ परमहंस

एक बार महर्षि संतसेवी परमहंसजी महाराज से एक जिज्ञासु ने पूछा कि हमलोग सुनते हैं–

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देव महेश्वरः।
गुरु साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः।।

गुरु परमात्मा हैं, ये तो बात तो ठीक है; किन्तु गुरु को ब्रह्मा, विष्णु, महेश क्यों कहते हैं? गुरु महाराज ने उत्तर दिया—'ब्रह्माजी का काम है, सृजन करना। गुरु अपने शिष्य के हृदय में सद्ज्ञान का सृजन करते हैं। विष्णु का काम है—पालन-पोषण करना, तो गुरु जो सद्ज्ञान देते हैं, उसका पोषण भी करते हैं। शिव का काम है—संहार करना, तो गुरु हमारे दुर्गुणों का संहार करते हैं। इसलिए गुरु को ब्रह्मा, विष्णु, महेश कहा जाता है।

भगवान बुद्ध के जमाने की बात है। उनके मौसेरे भाई आयुष्मान नन्द के मन में वैराग्य हो गया। वे घर-वार, परिवार आदि को त्यागकर भगवान की शरण में आ गए। कुछ दिनों तक सब ठीक रहा, पर बाद में कभी-कभी उन्हें पत्नी की याद आने लगी। जब वे घर से प्रस्थान कर रहे थे, उस समय उनकी पत्नी ने करुण स्वर में उनसे कहा था—'प्रियतम! जाओ, किन्तु इस पतिता पत्नी को भूल न जाना।' यह वाक्य उनके मन में रह-रहकर गूँज उठता था। परिणाम यह हुआ कि अब उनके लिए पत्नी से दूर रहना कठिन हो गया।

उन्होंने संन्यासियों से कह दिया कि अब वे आश्रम त्यागकर घर में ही रहेंगे। भिक्षुओं से भगवान् को इस बात की जानकारी मिली, तो उन्होंने नन्द को बुलाकर पूछा–'नन्द! क्या यह सच है कि तुम संन्यास त्यागकर घर जाना चाहते हो?' नन्द ने नम्रतापूर्वक कहा-'हाँ भन्ते!'

भगवान ने अपने योगबल से नन्द को तावतिंस लोक (एक प्रकार का स्वर्गलोक) ले गए। वहाँ पाँच सौ महासुन्दर अप्सराएँ नृत्य कर रही थीं। नंद उन्हें देखकर अचंभित रह गया। भगवान् ने नन्द से पूछा—'नन्द! तुम्हारी पत्नी की सुंदरता इन अप्सराओं के सामने कैसी है?' नन्द ने कहा—'भन्ते! इनके चरणों में जो सुन्दरता है, वह मेरी पत्नी के चेहरे में भी नहीं है।' भगवान बुद्ध ने कहा—'देखो नन्द, यदि तुम एक वर्षपर्यन्त दृढ़तापूर्वक ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए साधना करो, तो इन अप्सराओं में जो तुम्हें पसंद हो, वे सब तुम्हें दे दूँगा।' नन्द ने प्रसन्न होकर उनका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और भगवान के निर्देशानुसार साधनामय जीवन बिताने लगा।

उन्होंने एक वर्ष तक तत्परता से कड़ी साधना की। अन्तर्यामी तथागत ने एक दिन नन्द को बुलाकर कहा—'नन्द! तुम्हारी तपस्या पूरी हो गई। अब बताओ, कौन-सी अप्सराएँ मैं तुम्हें दूँ?' नन्द ने कर जोड़कर कहा—'भन्ते! आपने जो हमें दे दिया है, उसके बाद अब मुझे एक भी स्त्री नहीं चाहिए।'

कथा बतलाती है कि सद्गुरु अपने शिष्यों की रक्षा किस तरह करते हैं। आंतरिक साधना करके जब सिमटाव होता है, तब साधक

प्रकाश में चला जाता है और उसका जीवन प्रकाशित हो जाता है। सारे पाप जलकर खत्म हो जाते हैं। तब सांसारिक भोगों की इच्छा समाप्त हो जाती है।

सहजो गुरु रच्छा करैं, मेटैं सब दुख दुन्द।
मन की जानैं सब गुरु, कहा छिपावै अंध।।

प्रत्येक व्यक्ति को चाहिये गुरु के शरण में रहें, गुरु की सेवा करें और गुरु की आज्ञा में चलें। उनके ज्ञान को हमलोग अपने जीवन में उतारेंगे, तो हमारा परम कल्याण होगा। ■ ■

गुरुदेव दानि तारण, सब भव व्यथा विदारण।
मम सकल काज सारन, अपना दरस दिखा दो ॥ १ ॥
विषयों में ही मन लागे, सत्संग से हटि भागे।
मोको करो सभागे, सत्संग में लगा दो ॥ २ ॥
जब जाप जपन लागूँ, तव ध्यान में जब पागूँ।
चिन्तन सभी तब त्यागूँ, ऐसी लगन लगा दो ॥ ३ ॥
दृष्टि अड़ै सुखमन में, मन मगन हो भजन में।
ललचे न कोउ रँग में, इक बिन्दु को धरा दो ॥ ४ ॥
जौं सूर्त दल सहस में, वा त्रिकुटी महल में।
चढ़ि जाय तहँहु बिन्दु में, मम दृष्टि को लगा दो ॥ ५ ॥
कोउ रूप को न देखूँ, इक बिन्दु सबमें पेखूँ।
रिधि-सिद्धि को न लेखूँ, ऐसी सुरत सिमटा दो ॥ ६ ॥
घंट शंख ना नगारा, मुरली न बीन तारा।
की धुन में फँस रहूँ मैं, गुरु ऐसे ही बना दो ॥ ७ ॥
धुन अनाहत की हो, घट घट में जो सतत हो।
जो सारधुन अहत हो, तिसमें सुरत लगा दो ॥ ८ ॥
जो जगत से विलक्षण, जिसमें न विषय लक्षण।
जो एकरस सकल क्षण, तिसमें मुझे रमा दो ॥ ९ ॥
गुरु शरण हूँ तुम्हारी, भावे करो हमारी।
एक आस है तिहारी, भवफंद से छोड़ा दो ॥ १० ॥
सब औगुणों से पूरे, हौं मैं गुरू जरूरे।
तुमसे न कुछ भी दूरे, औगुण सकल जला दो ॥ ११ ॥
कपटी कपूत जौं हूँ, तुम्हरो कहाउँ तौ हूँ।
शरणी तिहार ही हूँ, चाहो सो मोहि बना दो ॥ १२ ॥

उपदेश (चौपाई)

सुनिये सकल जगत के वासी। यह जग नश्वर सकल विनाशी ॥१॥
यह जग धूमधाम रे भाई । यह जग जानो छली महाई ॥२॥
सबहिं कहा यहि अगमापाई। तुम पकड़ा यहि जानि सहाई ॥३॥
मृगतृष्णा जल सम सुख याकी। तुम मृग ललचहु देखि एकाकी ॥४॥
याते भव दुख सहहु महाई। बिन सतगुरु कहो कौन सहाई ॥५॥
यहि सराइ महँ निज नहिं कोई। सुत पितु मातु नारि किन होई ॥६॥
भाई बंधु कुटुम परिवारा। राजा रैयत सकल पसारा ॥७॥
सातो स्वर्गहु केर निवासी। दिव्य देव सब अमित विलासी ॥८॥
कोइ न स्थिर सबहिं बटोही। सत्य शान्ति एक स्थिर वोही ॥९॥
शान्तिरूप सर्वेश्वर जानो। शब्दातीत कहि सन्त बखानो ॥१०॥
क्षर अक्षर के पार हैं येही। सगुण अगुण पर सकल सनेही ॥११॥
अलख अगम अरु नाम अनामा। अनिर्वाच्य सब पर सुखधामा ॥१२॥
ये सब मन पर गुण इनके ही। पड़े महादुख संशय जेही ॥१३॥
यहि तुम्हरा निज प्रभु रे भाई। जहाँ तहाँ तव सदा सहाई ॥१४॥
इन्ह की भक्ति करो मन लाई। भक्ति भेद सतगुरु से पाई ॥१५॥
सतगुरु इन्ह में अन्तर नाहीं। अस प्रतीत धरि रहु गुरु पाहीं ॥१६॥
गुरु-सेवा गुरु-पूजा करना। अनट बनट कछु मन नहिं धरना ॥१७॥
अनासक्त जग में रहो भाई। दमन करो इन्द्रिन दुखदायी ॥१८॥
काम क्रोध मद मोह को त्यागो। तृष्णा तजि गुरु-भक्ति में लागो ॥१९॥
मन कर सकल कपट अभिमाना। राग द्वेष अवगुण विधि नाना ॥२०॥
रस रस तजो तबहिं कल्याणा। धरि गुरु मत तजि मन मत खाना ॥२१॥
परत्रिय झूठ नशा अरु हिंसा। चोरी लेकर पाँच गरिंसा ॥२२॥
तजो सकल यह तुम्हरो घाती। भव बंधन कर जबर संघाती ॥२३॥
दारू गाँजा भाँग अफीमा। ताड़ी चण्डू मदक कोकीना ॥२४॥
सहित तम्बाकू नशा हैं जितने। तजन योग्य तज डारो तितने ॥२५॥
मांस मछलिया भोजन त्यागो। सतगुण खान-पान में पागो ॥२६॥
खान-पान को प्रथम सम्हारो। तब रस-रस सब अवगुण मारो ॥२७॥

नित सतसंगति करो बनाई। अन्तर बाहर द्वै विधि भाई ॥२८॥
धर्मकथा बाहर सत्संगा। अन्तर सत्संग ध्यान अभंगा ॥२९॥
नैनन मूँदि ध्यान को साधन। करो होइ दृढ़ बैठि सुखासन ॥३०॥
मानस नाम जाप गुरु केरा। मानस रूप ध्यान उन्हि केरा ॥३१॥
यहि अवलम्ब ध्यान कछु होई। पुनः दृष्टि बल कीजै सोई ॥३२॥
सुखमन बिन्दु को धरो दृष्टि से। सुरत छुड़ाओ पिण्ड सृष्टि से ॥३३॥
धरकर बिन्दु सुनो अनहद ध्वनि। विविध भाँति की होती पुनि पुनि ॥३४॥
ध्वनि सुनि चढ़ती सूरति जाई। अन्तर पट टूटै दुखदाई ॥३५॥
छाड़ि पिण्ड तम देश महाई। ज्योति देश ब्रह्मांड में जाई ॥३६॥
ध्वनि धरि याहू पार चढ़ाई। सुरत करै अब सुनै अघाई ॥३७॥
रामनाम धुन सत धुन सारा। सारशब्द जेहि सन्त पुकारा ॥३८॥
सो ध्वनि निर्गुण निर्मल चेतन। सुरत गहो तजि चलो अचेतन ॥३९॥
यहु ध्वनि लीन अध्वनि में होई। निर्गुण पद के आगे सोई ॥४०॥
मंडल शब्द केर छुटि जाई। अधुन अशब्द में जाइ समाई ॥४१॥
अधुन अशब्द सर्वेश्वर कहिये। शान्तिस्वरूप याहि को लहिये ॥४२॥
अस गति होय सो सन्त कहावै। जीवन्मुक्त सो जगहिं चेतावै ॥४३॥
सन्तमता कर भेद रे भाई। गाइ गाइ दीन्हा समुझाई ॥४४॥
जो जानै सो करै अभ्यासा। सतचित करि करै जग में वासा ॥४५॥
विरति पंथ महँ बढ़े सदाई। सत्संग सों करै प्रीति महाई ॥४६॥
तोहि बोधे दृढ़ ज्ञान बताई। सब संशय तव देइ छोड़ाई ॥४७॥
ताको मानो गुरू सप्रीती। सेवो ताहि सन्त की नीती ॥४८॥
गुरु से कपट कछू नहिं राखो। उनके प्रेम अमिय को चाखो ॥४९॥
मीठी बोल बोलियो उनसे। अहंकार से सब कुछ बिनसे ॥५०॥
सो उनसे कभुँ करियो नाहीं। नहिं तो रहिहौ भव ही माहीं ॥५१॥

–महर्षि मेँहीँ-परमहंसजी महाराज